॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—१९ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—९-१२

ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायकी
भागवत परम्पराके आचार्य

• स्तवमाला • गुरुवर्गका वाणी-वैभव • श्रील गुरुदेवके वचनामृत

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज
श्रीयुक्ता उमा दासी, श्रीयुक्ता सुचित्रा देवी दासी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीपाद प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीसुबलसखा दास, श्रीप्रेमदास

ले-आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीभक्तबान्धव कृष्णकारुण्य महाराज

कार्यकारी सहायक—पूजा दासी, विजयलक्ष्मी दासी, विजयकृष्ण दास, विनीतकृष्ण दास, गौरप्रिया दासी

आभार—सुशीलकृष्ण दास, शचीनन्दन दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

वर्ष ❧ १९

श्रीगौराब्द - ५३६
वि. सं. - २०७९; केशव-गोविन्द मास ; सन् - २०२२-२३ (९ नवम्बर-७ मार्च)

संख्या ❧ ९-१२

विषय-सूची

'स्तव-वैभव'

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत श्रीगोवर्धनोद्धार..... २
—श्रील रूप गोस्वामी

गुरुवर्गका वाणी-वैभव

जीवके प्रति उपदेश..... ४
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप..... ७
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

बिना किसी अनुबन्धके दान किये गये निर्गुण-स्थलपर ही मठ-मन्दिरकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए..... ११
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका अट्ठाईसवाँ वर्ष..... १२
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवके वचनामृत एवं पत्रामृत

आम्नाय-विवृत्ति..... १६
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

श्रीगौरसुन्दर तुमको भजन-सम्बन्धी सारी सुविधाएँ प्रदान करेंगे..... २५

मैं तुम्हारे वंशका ऋणी बन गया हूँ..... २६
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

श्रीगुरु-चरणोंमें—

भक्ति-प्रसूनाञ्जलि..... २७

आर्त्ति निवेदन..... २८

विरह-सम्वाद

भक्तिमाधुरी श्रीयुक्ता उमा दीदीकी स्मृतिमें..... २९

श्रीदामोदर प्रभुकी स्मृतिमें..... ५७

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक
श्रीश्रील रूप गोस्वामी प्रभुके द्वारा प्रणीत

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत

(वर्ष-१९, संख्या-५-८ से आगे)

श्रीगोवर्धनोद्धराय नमः।

मुहुर्वृष्टिखिन्नां परित्रासभिन्नां व्रजेशप्रधानां ततिं बल्लवानाम्।
विलोक्याप्तशीतां गवालीञ्च भीतां कृपाभिः समुन्नं सुहृत्प्रेमनुन्नम्॥ ६॥

निरन्तर वर्षापातके कारण गोकुलवासियोंको खिन्न और भयसे व्याकुल देखकर एवं गायोंको भी ठण्डसे ठिठुरता देखकर आप आत्मीय जनोंकी रक्षाके लिये दयाके परवश हो गये॥ ६॥

ततः सव्यहस्तेन हस्तीन्द्रखेलं समुद्धृत्य गोवर्धनं साबहेलम्।
अदभ्रं तमभ्रं लिहं शैलराजं मुदा बिभ्रतं बिभ्रमज्जन्तुभाजम्॥ ७॥

तदन्तर गजराजकी भाँति लीलाशाली आपने अपनी वार्यी भुजाके द्वारा नाना प्राणियोंसे परिपूर्ण उस गगनस्पर्शी महान् गिरिराज गोवर्धनको उठाकर कौतुकसहित धारण किया॥ ७॥

प्रविष्टासि मातः कथं शोकभारे परिभ्राजमाने सुते मयुदारे।
अभूवन्भवन्तो विनष्टोपसर्गा न चित्ते विधत्त भ्रमं बन्धुवर्गाः॥ ८॥

तदन्तर यशोदाको सम्बोधन करते हुए कहा—हे माता! आपके पुत्र मेरे रहते हुए आप किसलिये शोकसे आकुल हो रहीं हैं? इन्द्र कुपित होकर आपका कुछ भी नहीं कर पायेगा। और अपने स्वजनोंको सम्बोधित करते हुए आप कहने लगे—हे बन्धुगण! आप किसी भी प्रकारसे भ्रान्त नहीं होइये तथा धैर्य धारण करते हुए यह मानिये कि समस्त विपदा दूर हो गयी है॥ ८॥

हता तावदीतिर्विधेया न भीतिः कृतेयं विशाला मया शैलशाला।
तदस्यां प्रहर्षादवज्ञातवर्षा विहस्यामरेशं कुरुध्वं प्रवेशम्॥ ९॥

आप लोग भय मत करो, यह अतिवृष्टि दूर हो गयी है। देखो आप लोगोंकी रक्षाके लिये मैंने इस विशाल पर्वतको उठाकर (इसके नीचे) आप सबके लिए [नव] गृहका निर्माण कर दिया है। अतएव आपलोग वर्षा और उसके प्रवर्त्तक देवराजको तुच्छ जानकर स्वच्छन्द चित्तसे इस पर्वतके नीचे प्रवेश करें॥ ९॥

इति स्वैरमाश्वासितै र्गोपवृन्दैः परानन्द संदीपितास्यारविन्दैः।
गिरेर्गर्तमासाद्य हर्म्योपमानं चिरेणातिहृष्टैः परिष्टूयमानम्॥ १०॥

इस प्रकार आश्वासन प्राप्तकर गोपोंके मुखकमल हर्षसे प्रफुल्लित हो गये। अनन्तर वे गोप हर्षचित्तसे अट्टालिकाके समान उस गोवर्धनके गह्वरमें प्रवेश करके आपका स्तव करने लगे॥ १०॥

गिरीन्द्रं गुरुं कोमले पञ्च शाखे कथं हन्त धत्ते सखा ते विशाखे।
पुरस्तादमुं प्रेक्ष्य हा चिन्तयेदं मुहुर्मामकीनं मनोयाति भेदम्॥ ११॥

प्रथमतः वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिका निजप्रिय सखी विशाखाको सम्बोधनकर कहने लगीं—अयि विशाखे! आपके सखा अपने सुकोमल हस्तकमलके ऊपर किस प्रकारसे इस विशाल पर्वतको धारण कर रहे हैं? आहा! अपने सामने ऐसी अवस्थामें इनके दर्शन करके मेरा हृदय निरन्तर विदीर्ण हो रहा है॥ ११॥

स्तनद्भिः कठोरे घनैर्ध्वान्तघोरे भ्रमद्वातमाले हताशेऽत्रकाले।
घनस्पर्शिकूटं वहन्नन्नकूटं कथं स्यान्न कान्तः सरोजाक्षि तान्तः॥ १२॥

हे कमलनयने विशाखे! भयङ्कर मेघकी गर्जना श्रवणकर देखो-देखो चारों ओर घटाओं द्वारा अन्धकार व्याप्त होनेके कारण दिशाका निर्णय करना कठिन हो रहा है, प्रबल वेगके द्वारा वायु प्रवाहित हो रही है, इस प्रकारके भीषण समयमें उन्नत शिखरवाले तथा अन्नकूट भक्षणकारी अत्यन्त भारी गिरिराज गोवर्धनको धारण करनेपर क्या आपके प्रियतम क्लान्त नहीं हो रहे हैं?॥ १२॥

न तिष्ठन्ति गोष्ठे कठोराङ्गदण्डाः कियन्तोऽत्र गोपाः समन्तात्प्रचण्डाः।
शिरीषप्रसूनावलीसौकुमार्ये धृताधूरियं भूरिरस्मिन्किमार्ये॥ १३॥

तत्पश्चात् श्रीमती राधिका यशोदा मातासे कहने लगीं—अयि आर्ये! व्रजेश्वरी! इस व्रजधाममें कठोर शरीरवाले प्रचण्ड बलिष्ठ अनेक गोप हैं, उनके रहते हुए आपने नव कुसुमकी भाँति सुकोमल अपने पुत्रके हाथमें ऐसे विशाल भारवाले श्रीगिरिराजको किस प्रकारसे धारण करा दिया है?॥ १३॥

क्रमशः

जीवके प्रति उपदेश

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी-वैभव

प्रश्न १—मनुष्योंके प्रति ठाकुर भक्तिविनोदका प्राथमिक उपदेश क्या है?

उत्तर—"मनुष्य देह दुर्लभ है, अतः इसका एक दिन भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।"

(सहजिया मतका हेयत्व, सज्जन-तोषणी ४/६)

प्रश्न २—श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने किस प्रकारसे धर्मजीवन यापन करनेका उपदेश दिया है?

उत्तर—"इस जगत्में धर्मधनकी अपेक्षा अन्य कोई धन ही नहीं है। शरीर क्षणभङ्गुर है, आज है, कल नहीं है। हमारे परम दयालु प्रभुने कृपापूर्वक इस जगत्के लिए जो नाम तथा प्रेमधन दिया है, उसे साधु-गुरुसे प्राप्त करो। इस जगत्में श्रीमद्भागवत तथा श्रीचैतन्यचरितामृत—ये दोनों ही ग्रन्थ अमूल्य रत्न हैं। यत्नपूर्वक उनका अध्ययन और अनुशीलन करो। लोगोंको विद्या दिखानेकी आवश्यकता नहीं है। लोगोंको भक्तिधन दान करना। निष्पाप जीवनमें धर्मपूर्वक अर्थ उपार्जनकर स्वयंका तथा अपने निजजनोंका प्रतिपालन करना; किन्तु कभी भी कृष्णनाम नहीं भूलना।"

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर आत्मचरित)

प्रश्न ३—क्या कृष्णभक्तको प्लेगसे भय करना चाहिए?

उत्तर—"तुम जो यह प्लेगसे इतना भय कर रहे हो, यह अवैष्णवता-मात्र है। देखो भाई! प्लेग क्या कर सकता है? अति अपदार्थ जीवनको समाप्तकर प्लेग तुम्हारी [और] क्या क्षति कर सकता है? यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो प्लेगसे भी एक शिक्षा ग्रहण करो। यदि कल ही तुम्हें प्लेग हो जाय, तो तुम जीवित नहीं रहोगे, तब तुम्हारी इतनी सुख-सम्पत्ति कहाँ जायेगी, एकबार इसपर विचार करके देखो। अतएव व्यर्थ समय न गँवाकर निरन्तर निष्कपट भक्तिके साथ हरिनाम करो। कोटि-कोटि प्लेग आकर भी तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं पायेंगे।"

(वैष्णवोंका व्यवहार दुःख, सज्जन-तोषणी १०/२)

प्रश्न ४—ठाकुर श्रील भक्तिविनोदने परदुःखकातर व्यक्तियोंको किस आदर्शका अनुसरण करनेको कहा है?

उत्तर—"जगत्के सभी जीवोंका सम्मान करो, सभी जीवोंके दुःखोंका निवारण करनेका यत्न करो, सभी जीवोंके साथ रहकर उनके मङ्गलकी चेष्टा करो,

किन्तु श्रीगौराङ्गके परम अनुसरणीय चरित्र तथा महा-सारगर्भ उपदेशोंको कभी भी मत भूलना।"

(श्रीगौराङ्ग समाज, सज्जन-तोषणी ११/३)

प्रश्न ५—जीवका इस जगत्में आना कब सार्थक होता है?

उत्तर— "कृष्ण नित्यसुत जार, शोक कभु नाहि तार,
अनित्य आसक्ति सर्वनाश।
आसियाछ ए संसारे, कृष्ण भजिवारे तरे,
नित्यतत्त्व करह विलास॥"

[अर्थात् जो कृष्णको अपना नित्यपुत्र मान लेता है—जान लेता है, उसे कभी शोक हो ही नहीं सकता। उसकी अनित्य आसक्तिका सम्पूर्णतः नाश हो जाता है। तुम इस संसारमें कृष्णका भजन करनेके लिए आये हो, अतः नित्यतत्त्व कृष्णका ही भजन करो।"]

(शोकपातन २, गीतमाला)

प्रश्न ६—अपने सुमङ्गलकी आकाङ्क्षा करनेवाले परमार्थ पथिकके लिए क्या कर्तव्य निर्दिष्ट हुए हैं?

उत्तर—"संसार निर्वाह करि जाब आमि वृन्दावन,
ऋणत्रय शोधिवारे करितेछि सुयतन,
ए आशाय नाहि प्रयोजन॥
एमन दुराशावशे, जा'बे प्राण अवशेषे,
ना हइबे दीनबन्धु चरण सेवन।
यदि सुमङ्गल चाओ, सदा कृष्ण नाम गाओ,
गृहे थाक, वने थाक, इथे तर्क अकारण।"

(प्रयोजन विज्ञान, लक्षण उपलब्धि, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् मैं संसारके समस्त कर्तव्योंको पूर्णकर वृन्दावन जाऊँगा, इसलिए मैं तीनों ऋणोंको शोधन करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ—ऐसी आशाका कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसी व्यर्थकी आशाके कारण अन्तमें प्राण चले जायेंगे तथा इस जीवनमें भगवान्की सेवा नहीं हो पायेगी। यदि अपना सुमङ्गल चाहते हो, तो चाहे घरमें रहो या वनमें सदा कृष्णनामका गान करो, इस विषयमें किसी भी प्रकारका तर्क व्यर्थ है।]

प्रश्न ७—श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने अचिरस्थायी मनुष्यजीवनका श्रेष्ठ कर्तव्य किस प्रकारसे निर्द्धारित किया है?

उत्तर—"तुम्हारी परमायु (जीवन अवधि) के दिन अधिक नहीं हैं। जो कुछ दिन बचे हैं, वे भी नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे परिपूर्ण हैं। अतः भाइयो! विशेष यत्न और आग्रहपूर्वक इस भागवतीय रसमाधुरीका आस्वादन करते रहो।"

(सिद्धप्रेमरस मधुरिमा)

प्रश्न ८—जाति-अभिमानियोंके प्रति ठाकुर श्रील भक्तिविनोदकी क्या उक्ति है?

उत्तर— "सामाजिक मान लये, थाक भाई विप्र हये,
वैष्णवे ना कर अपमान।
आदार व्यापारी हये, विवाद जहाज लये,
कभु नाहि करे बुद्धिमान॥"

(उपदेश ९, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् अरे भाई! ब्राह्मण अभिमानके कारण इस संसारमें तुम सामाजिक मान-सम्मानके वशीभूत होकर वैष्णवोंका अपमान मत करो। अदरकका व्यापारी होकर यदि कोई जहाजके यात्रा-भाड़ेको लेकर विवाद करता है, तो यह उसकी मूर्खता है, बुद्धिमान व्यक्ति कभी ऐसा विवाद नहीं करते।]

प्रश्न ९—फल्गुवैरागी तथा प्रतिष्ठाकामीके प्रति श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका क्या उपदेश है?

उत्तर—"तुमि त' चैतन्यदास, हरिभक्ति तव आश,
आश्रमेर लिङ्ग किवा फल।
प्रतिष्ठा करह दूर, वास तव शान्तिपुर,
साधुकृपा तोमार सम्बल॥"

(उपदेश १३, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् तुम तो श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास हो, हरिभक्ति ही तुम्हारा उद्देश्य है। केवल आश्रमधर्मके चिह्नोंको धारण करनेसे क्या लाभ होगा? अतः तुम इस प्रतिष्ठाको दूर करो, तभी तुम्हारा शान्तिपुरमें वास होगा

(तुम्हारा चित्त शान्त होगा), इस विषयमें साधुकृपा ही तुम्हारा एकमात्र सहारा है।]

प्रश्न १०—जड़ासक्तके प्रति ठाकुर श्रील भक्तिविनोदकी क्या उक्ति है?

उत्तर—"तबे शुद्धसत्ता ताइ, ए जड़जगते भाई,
केन मुग्ध हओ बार बार।
फिरे देख एकबार, आत्मा अमृतेर धार,
ताते बुद्धि उचित तोमार॥"

(उपदेश १, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् तुम्हारी सत्ता शुद्ध है—तुम भगवानके दास हो। हे भाई! तब फिर क्यों इस जड़जगत्में बार-बार मुग्ध हो रहे हो। एकबार विचार करके देखो, आत्मा तो नित्य है—तुम्हारी ऐसी बुद्धि होना ही उचित है।]

प्रश्न ११—वैष्णवाभिमानीके प्रति श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी क्या उक्ति है?

उत्तर— "वैष्णवेर परिचय, आवश्यक नाहि हय,
आडम्बरे कभु नाहि जाओ।
विनोदेर निवेदन, राधाकृष्ण गुणगान,
फुकारि फुकारि, सदा गाओ॥"

(उपदेश १३, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् वैष्णवोंका बाह्य परिचय आवश्यक नहीं होता, ऐसे आडम्बरमें कभी मत जाओ। श्रीभक्तिविनोदका यही निवेदन है कि सभी लोग सर्वदा ही उच्चस्वरसे श्रीराधाकृष्णका गुणगान करो।]

प्रश्न १२—महाजनपथकी अवहेलना करनेवाले दाम्भिकोंके प्रति ठाकुर श्रील भक्तिविनोदका क्या उपदेश है?

उत्तर—"फोंटा दीक्षा माला धरि', धूर्त्त करे सुचातुरी,
ताइ ताहे तोमार विराग।
महाजन पथे दोष, देखिया तोमार रोष,
पथ प्रति छाड़ अनुराग॥
एखन देखह भाइ, स्वर्ण छाड़ि लैले छाइ,
इहकाल परकाल जाय।
'कपट' बलिबे सबे, भकति ना पेले कबे,
दोहाते कि हबे उपाय॥"

(उपदेश १७, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् धूर्त्त व्यक्ति चतुरतापूर्वक तिलक और दीक्षा-माला धारणमात्र करके भजनका ढोंग करते हुए अपना वैराग्य दिखाते हैं। किन्तु, ऐसे लोग महाजनों द्वारा प्रदर्शित पथमें दोष देखते हैं और क्रोधित होकर उस पथके प्रति अनुराग छोड़ देते हैं—उस पथके प्रति विरक्त हो जाते हैं। परन्तु, अब देखो भाई! ऐसा करके तुम स्वर्णको छोड़कर राख ग्रहण कर रहे हो जिसके फलस्वरूप तुम्हारा वर्तमान एवं भविष्य दोनों ही नष्ट हो जायेंगे। ऐसा करनेसे सभी तुम्हें कपटी कहेंगे और तुम्हें कदापि भक्ति प्राप्त नहीं होगी। अब तुम ही विचार करो तुम्हें कौन-सा पथ अपनाना है।]

प्रश्न १३—लोगोंको मात्र दिखानेवाले प्रेमीके प्रति ठाकुर श्रील भक्तिविनोदका क्या उपदेश है?

उत्तर—"मुखे बले 'प्रेम प्रेम', वस्तुतः त्यजिया हेम,
शून्यग्रन्थि अञ्चले बन्धन॥"

(उपदेश १८, कल्याण-कल्पतरु)

[अर्थात् तुम केवल मुखसे ही अपनेमें 'प्रेम-प्रेम' होनेका ढ़िढोरा पिटते हो, वास्तवमें अप्राकृत प्रेम जो तप्त स्वर्णके समान शुद्ध है, तुमने उसकी प्राप्तिके उचित साधनको त्याग दिया है। इसलिए तुम्हारे हृदयरूपी आञ्चलमें जो गाँठ है, वह शून्य अर्थात् प्रेम रहित ही है।]

क्रमशः

[श्रील भक्तिविनोद वाणी वैभवसे अनुदित]

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप

श्रील प्रभुपाद और अध्यापक श्रीप्रमथनाथ मुखोपाध्याय

प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, अधोक्षज और अप्राकृतिक तत्त्वके सम्बन्धमें हरिकथा।

[२८ जुलाई, १९३६, मङ्गलवार, संध्यामें कलकत्तावासी एवं अपने नामके द्वारा ही धन्य वयोवृद्ध दार्शनिक पण्डित अध्यापक श्रीयुक्त प्रमथनाथ मुखोपाध्याय एम.ए. महाशयने प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके दर्शन और उनके श्रीमुखसे कुछ भगवत् प्रसङ्ग श्रवणके उद्देश्यसे कलकत्ताके श्रीगौड़ीय मठमें आगमन किया। अध्यापक महोदयका स्वरचित 'इतिहास और अभिव्यक्ति' नामक ग्रन्थ उनके दर्शनशास्त्रमें असाधारण पाण्डित्य-प्रतिभाका निर्देशक है। उनके प्रबन्ध और निबन्धादि विश्वविद्यालयमें परम आदरसे ग्रहण किये जाते हैं। उनका विनयी-नम्र और निष्कपट व्यवहार विशेष प्रशंसाके योग्य है। श्रील प्रभुपादको आचार्योचित सम्मान देते हुए अध्यापक महोदयने कथा-प्रसङ्गमें "प्रचलित विधिके द्वारा सत्शिक्षा लाभ नहीं होती"—जब यह बात कही, तब श्रील प्रभुपादने उस प्रसङ्गमें हरिकथा कहनी आरम्भ की। लगभग ढ़ाई घण्टे तक यह वार्त्तालाप हुआ। अध्यापक महोदय उसे श्रवण करके विशेष रूपसे प्रसन्न हुए। वे विग्रहके दर्शन करके, विदायी ग्रहण करनेके समय बार-बार कह रहे थे—"आचार्यके मुखसे शब्दब्रह्मकी कथा न सुननेपर जीवका कुछ भी मङ्गल नहीं हो सकता। आध्यक्षिक (इन्द्रियग्राह्य) ज्ञान अति कष्टसे 'तनुभा' (भगवत् देहकी कान्ति) अर्थात् ब्रह्मतक दर्शन करके लौट आता है। प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष तक ही आध्यक्षिक व्यक्तिकी पहुँच है। उसके ऊपर विचार करनेकी क्षमता उसमें नहीं है—अधोक्षज और अप्राकृतकी बात कोई भी आध्यक्षिक जन नहीं कह सकता। आज गुरुमहाराजकी कथा श्रवणसे मैं परमानन्दित हुआ।"

श्रील प्रभुपादने अध्यापक मुखोपाध्याय महोदयके साथ जो महामूल्य वार्त्तालाप किया था, उसका मर्म श्रील प्रभुपादके चरणाश्रित किसी एक जन द्वारा यथासम्भव जितना कुछ उनकी लेखनी एवं स्मृतिके द्वारा बङ्गलामें संरक्षित हुआ था, उसे निम्नलिखित रूपसे हिन्दीमें अनुदित किया गया है।]

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम्।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति॥

(श्रीमद्भा० १०/१४/२२)

—(ब्रह्मा भगवान्‌का स्तव करते हुये कह रहे हैं—हे भगवन्!) यह समस्त जगत् अनित्य है, इसलिये स्वप्नवत् और अचिरस्थायी है। अविद्याके प्रभावसे वास्तविक ज्ञान लुप्त होनेके कारण यह अतिशय दुःखप्रद है। आप नित्य सुख-बोध-तनु अर्थात् सच्चिदानन्दमय स्वरूप अनन्त—अधोक्षज वस्तु हैं; आपपर आश्रित अचिन्त्यशक्ति मायासे इसकी उत्पत्ति और विनाश साधित होनेपर भी यह सत्यके समान प्रतीत होता है। उपरोक्त श्लोकके 'इदं' शब्दका उद्दिष्ट यह जगत् मायिक है—[सृष्टिका] एक अंशमात्र है, किन्तु मध्यम आकृतियुक्त होनेपर भी भगवान्‌का शरीर शुद्ध सत्त्वात्मक—सम्पूर्ण है, अंश नहीं है। [जड़] जगत् सार्वकालिक सत्तारहित स्वरूप है, अर्थात् इसकी सत्ता सदा नहीं रहती है, अतः यह स्वप्नके समान है—स्वप्न-ज्ञानवत् यह अल्पकाल स्थायी है। किन्तु स्वाप्निक-वस्तुके समान होनेपर भी इस जगत्‌को मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

हमारी जाग्रतकाल अथवा स्वप्नकालकी जो अनुभूतियाँ हैं, वे सभी जड़-विश्वके अन्तर्गत हैं। जाग्रतकालमें जो अनुभूति होती है, वह स्वप्नकालमें नहीं होती और स्वप्नकालमें जो अनुभूति होती है, वह जाग्रतकालमें नहीं होती। इस जगत्‌में दृष्टाकी प्राकृत इन्द्रियोंसे ग्रहण किये गये ज्ञानसे ये सब वस्तुएँ उपस्थित होती हैं, वह ज्ञान उनकी सार्वकालिक सत्ताका संरक्षण नहीं कर सकता। हमारा जाग्रतकाल और स्वप्नकालका दर्शन जैसे परिवर्तनशील है, नित्यसुखबोधतनु भगवान्‌में वैसी परिवर्तनशीलता नहीं है। 'अन्या मीयते' इति माया। 'जिसे मापा जा सकता है, वह माया हैं।' ऐसे 'मापे जानेके' धर्मसे इस जगत्‌का उद्भव होता है, तथापि यह सत्यके समान प्रतीत होता है।

पहले नहीं थे, बादमें हुए, कुछ दिन रहकर विनष्ट होंगे—भगवान् इस प्रकारकी जन्म, स्थिति और विनाशशील वस्तु नहीं हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसत्परम्।
पादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० २/९/३२)

पहले नहीं थे, बादमें हुए, कुछ दिन रहकर विनष्ट होंगे—भगवान् इस प्रकारकी जन्म, स्थिति और विनाशशील वस्तु नहीं हैं।

"इस जगत्‌की सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था; सत्, असत् और अनिर्वचनीय निर्विशेष ब्रह्म तक अन्य कुछ भी मुझसे पृथक् रूपमें नहीं था। सृष्टि होनेके बाद इन सबके स्वरूपमें अन्तर्यामीरूपमें मैं ही हूँ और सृष्टि लय होनेपर एकमात्र मैं ही अवशिष्ट रहता हूँ।"

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—हमारी इन तीन प्राकृत अवस्थाओंमें देहात्माभिमानकी प्रबलताके कारण भगवान्‌की सार्वकालिक सत्ता, ज्ञान और आनन्दानुभवके विषयमें विमूढ़ अवस्थावशतः निरन्तर उत्ताल तरङ्गोंके थपेड़ोंसे जीवन स्त्रोतमें बहते-बहते एक दिन हम सदाके लिये इससे विरक्त [मृत्युको

प्राप्त] होंगे। किन्तु भगवान् सर्वदा ही जगत्की परिवर्तनशील सभी अवस्थाओंका अतिक्रम करके सर्वोपरि अपने स्वतःकर्तृत्व धर्मका विस्तार करते हुए नित्य नवनवायमानरूपसे चिद्विलास परायण होकर विराजमान रहते हैं।

कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्च्यादमङ्गलम्।
विपश्चिन्नश्वरं पश्योददृष्टमपि दृष्टवत्॥

आध्यक्षिक (इन्द्रियग्राह्य ज्ञानपर निर्भर) दृष्टाकी दृष्ट और अदृष्ट—दोनों वस्तुएँ ही नश्वर हैं। दृष्ट वस्तुको स्थूल कहकर उसको इन्द्रियग्राह्य रूपमें विचार किया जाता है, अदृष्ट वस्तु सूक्ष्म (subtle) कहलानेके कारण स्थूल इन्द्रियज्ञानकी उपलब्धिका विषय नहीं होती; किन्तु, वस्तुतः दोनोंमें ही नित्यताका अभाव है। वस्तु किसी समयमें दृष्ट रहती है और किसी समयमें अदृष्ट—जैसे कर्पूर अभी हम देख रहे हैं, परन्तु जब यह उड़ जायेगा तब यह दिखायी नहीं देगा। कर्तृत्व-अभिमानमें जो स्थूल और सूक्ष्म कर्म हैं, उनमें उनके विकृत होनेकी योग्यता है—इसलिए ब्रह्माके लोकतक भी अमङ्गल की सम्भावना है। 'विरिञ्च्य' कहनेका तात्पर्य विरिञ्चि अर्थात् ब्रह्माके द्वारा जो सृष्ट हुआ है। पण्डित व्यक्ति दृष्ट और अदृष्ट—दोनों को ही समान और अचिरस्थायीके रूपमें जानते हैं। स्वप्नकालमें जो दिखलायी देता है, जाग्रतकालमें उसकी objective existence अनुभूति का विषय नहीं होती है।

प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष—इन तीन Epistemological gradatory limits को जब तक हम cross नहीं कर पाते, तब तक हमारी आध्यक्षिकता (इन्द्रियग्राह्य ज्ञानपर निर्भरता) दूर नहीं होगी, हम अधोक्षजके राज्यमें—तुरीय जगत्में पहुँच नहीं सकते। हमारे नेत्र-कान-नासिका-जिह्वा-त्वचादि इन्द्रियाँ स्थूल (concrete) वस्तुको ग्रहण करती हैं और मनमें उनके सूक्ष्म (abstract) भाव धारण होते हैं। जो भी हमारे बाह्य भगवद्विमुख इन्द्रियोंके कर्तृत्व अभिमानमें ग्रहण करने योग्य विषय होते हैं, वे ही प्रत्यक्ष हैं।

प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष—इन तीन Epistemological gradatory limits को जब तक हम cross नहीं कर पाते, तब तक हमारी आध्यक्षिकता (इन्द्रियग्राह्य ज्ञानपर निर्भरता) दूर नहीं होगी, हम अधोक्षजके राज्यमें—तुरीय जगत्में पहुँच नहीं सकते।

किसी दूसरेके द्वारा प्रत्यक्ष किए ज्ञानमें विश्वास स्थापनका नाम ही परोक्ष ज्ञान है। जैसे मैं यहाँपर बैठा हूँ, किसी दूर स्थित वस्तुके विषयमें टेलीफोनसे communicated (सञ्चारित) होकर किसी अन्यके द्वारा received (प्राप्त) ज्ञानके मेरे पास transmitted (संचार) होनेपर—यह परोक्ष है। अर्थात् किसी दूसरेकी इन्द्रियोंके द्वारा जो प्रत्यक्ष हुआ है, उसमें आस्था-स्थापन-मूलक है परोक्ष। Direct evidence का ही आदर है, hearsay evidence का आदर नहीं भी हो सकता। जिन्होंने सुना है और फिर कहे रहे हैं, उन्होंने ठीकसे सुना अथवा नहीं, यह देखना आवश्यक है।

एक व्यक्ति deposition (बयान) दे रहा है—उसने प्रत्यक्ष देखा है ऐसा मानना होगा। जैसे Judge विद्वान है—इसे मानना होगा—Universal decree (कथन) है; डॉक्टरका Certificate मानना होगा। ये विचारक या चिकित्सक हैं—ऐसा assumption करनेके बाद ही 'श्रवण' करनेकी प्रक्रिया आरम्भ होती है। किन्तु जिनसे श्रवण करेंगे, जो कह रहे हैं कि उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, यदि उनके ही प्रत्यक्ष करनेके विचारमें कोई भूल-त्रुटि हो, तब तो सबकुछ ही गढ़बड़ हो गया। और फिर, जिस किसी भी व्यक्तिने उनसे सुना, उस बातको कागजके ऊपर लिख लेनेपर भी वह evidence नहीं होगा। इसी प्रकार अपनी इन्द्रियोंसे ग्रहण किए गए ज्ञानपर या दूसरेकी इन्द्रियोंसे ग्रहण किए गए ज्ञानपर विश्वास स्थापन करना—दोनों ही भ्रम-प्रमाद-विप्रिलिप्सा-करणापाटव दोषसे युक्त हैं। जो वस्तु प्रत्यक्ष और परोक्ष विचारमें नहीं है, और जहाँ विवर्तका रहना उचित नहीं है, जैसे Tabula rasa—non-designative plane (निरुपाधिक राज्य), यही **अपरोक्ष** है। जिस वस्तुको मैंने देखा है अथवा मैंने नहीं देखा, परन्तु दूसरे व्यक्तिके दर्शनपर विश्वास करके उसको मान लिया है—ये दोनों ही प्राकृत इन्द्रियोंके ग्राह्य विषय हैं। किन्तु, तत्त्वविचारसे ऐसे प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञानसे अतीत अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले ज्ञानसे अतीत वस्तु 'अपरोक्ष' शब्दसे उद्दिष्ट होती है। अपने अथवा अन्यके इन्द्रियज्ञानके द्वारा ग्रहण किए विषयोंकी नश्वरतादि दर्शन करके, अर्थात् इस प्रापञ्चिक अस्मिता (अंहभाव) से उत्पन्न प्राकृत नाम-रूपादिके परिणामको देखकर—रहस्यविद् अभिज्ञ (विद्वान) व्यक्ति तत्त्व विचारमें प्रवृत्त होनेपर जो '**अपरोक्ष**' शब्दके द्वारा वस्तुकी इन्द्रिय-अतीत सत्ताकी घोषणा करते हैं, वस्तुतः वहीं वास्तव-ज्ञानकी परिसमाप्ति नहीं है। इस जगत्की अभिज्ञता (जानकारी) से सञ्चित ज्ञानराशि द्वारा परतत्त्वज्ञानको भी अपने ही विचारके अन्तर्गत करनेकी चेष्टासे वास्तवमें आध्यक्षिकतासे छुटकारा प्राप्त नहीं होता, अपितु उसके द्वारा वस्तुके निर्विशेष-स्वरूपमात्रके दर्शनका अभिनय ही निरस्त होता है।

Godhead is He who has reserved the right of not being measured by human senses. 'भगवान्' भूतेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य वस्तु नहीं हैं।

प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष—knower, knowledge एवं knowable—इन तीन विचारोंके एकत्र होनेपर non-designative (निरुपाधिक) नामक एक विचार उपस्थित होता है। ज्ञेय पदार्थके अपरोक्षके स्तरपर, या प्रत्यक्ष और परोक्षके स्तरपर रहनेसे मानवकी बुद्धिमें उसके कुछ-कुछ धारण करनेका सामर्थ्य होता है; किन्तु श्रीमद्भागवतमें वस्तुतत्त्व-निरूपणके विषयमें इन तीनोंमें-से एकको भी स्पर्श न करते हुए 'अधोक्षज' नामक एक अपूर्व शब्दका व्यवहार किया गया है। "अधःकृतं तिरस्कृतम् अक्षजं जीवानाम् इन्द्रियजं ज्ञानं येन सः"—अधोक्षजः। [अर्थात् जो वस्तु जीवोंकी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए गए ज्ञानको तिरस्कृत करते हुए—उसके द्वारा अग्राह्य होकर विराजमान है, वह अधोक्षज कहलाती है।] Godhead is He who has reserved the right of not being measured by human senses. 'भगवान्' भूतेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य वस्तु नहीं हैं। क्रमशः

[श्रीसरस्वती-संलापसे अनुदित]

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पत्रावली

(पत्र-१९)

बिना किसी अनुबन्धके दान किये गये निर्गुण-स्थलपर ही मठ-मन्दिरकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला,
पोः—मथुरा (उः प्रः)
दिः—५/२/१९६२

स्नेहास्पदेषु—

————! हम लोग बिना किसी अनुबन्ध [शर्त] के दिये गये दानको ही दान कहते हैं। वही सात्विक दान है। यदि दान सात्विक नहीं हो तो वह भगवान्‌की सेवामें नहीं लगता। भगवान्‌के भक्तोंके हाथमें दिया गया ऐसा दान विशुद्धसत्वमें अर्थात् निर्गुणरूपमें परिणत हो जाता है। परन्तु, ऐसा आमतल्या [नामक स्थान] में सम्भव होना कठिन है।

भुवन बाबु अपने नामपर किस प्रकारसे मठ करेंगे, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। 'भुवन' कहनेसे पृथ्वी या मिट्टीको समझा जाता है। श्रीवेदान्त-समितिके मठ प्राकृत जगत्, पृथ्वी या मिट्टीके देशके बाहर होते हैं। अतः 'भुवन' नामसे कोई मठ नहीं हो सकता। परन्तु उनके नामसे एक पत्थरका फलक [name plate] लगाया जा सकता है।

उनकी जमीनका मूल्य ५-७ हजार रुपया है, किन्तु, हमें उसके ऊपर २०-२५ हजार रुपये खर्च करके मठ-मन्दिर बनाना होगा। अतः वास्तवमें वह दान नहीं है। इति—

नित्यमङ्गलाकाङ्क्षी—

B. P. Keshava

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

(श्रीगौड़ीय पत्रिका—वर्ष-४२, संख्या-९ से अनुदित)

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका अट्ठाईसवाँ वर्ष

(वर्ष-१९, संख्या-५-८ से आगे)

कलिजीवका दुर्भाग्य, दुरवस्था एवं म्लेच्छाचार

कलिकालमें धर्म, तपस्या, सत्य आदि प्राय लुप्त हैं। कलिकालमें पृथ्वीपर अनाजादिकी उत्पत्ति अल्प होती है, राजा कुटिल, ब्राह्मणगण शास्त्राचारसे विमुख, मानवगण स्त्रीके वशीभूत, स्त्रियाँ अत्यन्त चञ्चल-स्वभावयुक्त एवं लोग सदैव पाप-अनुरक्त होते हैं। इस कालमें साधुगण सन्न(जड़)के समान और दुर्जनलोग प्रभावशाली होंगे। कलिकी प्रबलतासे वेदमार्गका अनुसरण करनेवाले साधुओंको कष्ट होगा। म्लेच्छजातीय राजागण धन-लोभी होंगे। रमणियाँ अत्यन्त दुर्दान्त (अनियन्त्रित), कलह-रत एवं गुरुजनोंकी निन्दा करनेवाली होंगी। आत्मीय स्वजन परस्पर विवाद-विसंवादमें रत रहकर एक दूसरेका विनाश करेंगे। कलिकी अन्तिम अवस्थामें धर्म-अधर्म लुप्त हो जायेंगे। हिन्दू, यवन, म्लेच्छ—सब एक प्रकारके हो जायेंगे। मनुष्य आचरणरहित और स्पृश्य-अस्पृश्यका विचार खोकर आहार-विहार, व्यवहार, वेश और बातचीतमें पशु और पिशाचके समान होंगे।

समस्त दोषोंके मूल कलिका महान गुण—'धन्यकलि' नामकरण

परम धार्मिक राजा परीक्षित्ने कलिका दमन करनेके बाद अन्तमें उसके वासके लिए पाँच स्थानोंका निर्देश दिया था, वह श्रीभागवतमें लिखित हैं। उन्होंने कलिको द्यूतक्रीड़ा (जुआ), मद्यपान, अवैध स्त्रीसङ्ग या आसक्ति, जीवहिंसा एवं अन्तमें स्वर्णमें स्थान दिया। कारण—अन्तमें कहे गये स्वर्ण या अर्थसे मिथ्याचार, अहङ्कार, काम और हिंसा सभी सञ्चरित होते हैं। अतः कलि राजा परीक्षित् द्वारा प्रदत्त इन पाँच स्थानों पर सन्तुष्ट होकर वास करने लगा। परन्तु जो अपना मङ्गल चाहते हैं, उनके लिए इन सब क्रियाओंमें संलग्न होना या उनको ग्रहण करना कदापि उचित नहीं है। विशेषकर धार्मिक व्यक्ति, राजा, लोकनेता और सद्गुरुके लिए ये कलिपञ्चक सब प्रकारसे परित्याग करने योग्य हैं—इस निषेधाज्ञाको विज्ञापित करनेमें भी परीक्षित् महाराजने भूल नहीं की। उन्होंने जब अपने गुरुदेव श्रील शुकदेव गोस्वामीसे समस्त दोषोंके मूल कलिसे

प्रजाओंकी मुक्तिके उपायके विषयमें प्रश्न किया, तो उन्हें सदुत्तर ही मिला—'कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।' अर्थात् कृष्णनाम-कीर्तनके द्वारा कलिके जीव बन्धनसे मुक्त होकर श्रीभगवान्‌को प्राप्त करेंगे। इसीलिए अभिन्न-व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रने कलिजीवके सौभाग्य-आकाशमें गौड़देशके पूर्वशैलमें श्रीजगन्नाथमिश्रके घर शचीनन्दनके रूपमें उदित (अवतरित) होकर अपने अनर्पितचर श्रीनाम-प्रेमको विशेष करुणा प्रकाशपूर्वक वितरण किया है। इसलिए तत्त्वदर्शीगणों द्वारा वर्तमान अट्ठाईसवाँ कलियुग 'धन्यकलि'के रूपमें वर्णित हुआ है। किसलिए वर्तमान कलि धन्य हुआ, उसे समझनेकी चेष्टा न कर कलिके प्रवाहमें शरीरको बहा देनेसे हमारा मङ्गल कहाँ है? जो इस तत्त्व-सिद्धान्तका अनुशीलन और अनुधावन करनेके लिए यत्न करते हैं, उनको शास्त्रोंमें 'सुमेधा'—सुबुद्धिजन कहा गया है।

कलिमें बहुत प्रकारकी नास्तिकताकी प्रबलता

जो साधु-शास्त्र-गुरुवाक्यको स्वीकार नहीं करते, वे नास्तिक हैं—कलिके चर हैं। जो अपौरुषेय [जो कार्य साधारण मनुष्यके द्वारा असम्भव] वेद और वेदोंके द्वारा प्रतिपादित विग्रह श्रीभगवान्‌के नाम-रूप-गुण-लीलादिको प्राकृत मानते हैं, वे अर्वाचीन या असुर हैं। जो निराकार निर्विशेषवादी हैं, वे ही अस्पृश्य, अधम और यम द्वारा दण्डनीय हैं। दुष्कृत, मूढ़, नराधम और मायाच्छन्न मनुष्य श्रीभगवान्‌के प्रति शरणागतिको स्वीकार नहीं करते। (१) अत्यन्त अवैध जीवन बितानेवाला व्यक्ति ही दुष्कृत है, (२) निरीश्वर नैतिक लोग ही मूढ़ हैं। (३) जो श्रीभगवान्‌को नीतिके अङ्गके रूपमें स्वीकार करते हैं तथा उनको नीतिके अधीश्वरके रूपमें नहीं मानते, वे नराधम हैं। (४) जो श्रीभगवान्‌को शक्तिमान उपास्य-तत्त्व, जीवको नित्य चित्स्वरूप, अचिद्वस्तुके साथ जीवका अनित्य सम्बन्ध तथा जीवको नित्य भगवद् दासके रूपमें नहीं जानते, वे वेद-वेदान्तादिका पाठ करके भी मायाच्छन्न हैं—ये सब आत्मकल्याण प्राप्त नहीं कर सकते।

शास्त्रानुशीलनमें अधिकारियोंका निर्णय

शास्त्रके अध्ययन और अनुशीलनमें जो विशेष अधिकारका विचार है, इसे जो मानना नहीं चाहते, वे भी नास्तिक और अदूरदर्शी हैं। श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने श्रीमद्भागवतमें रासपञ्चाध्यायके अन्तमें *'नैतत् समाचरेत् जातु मनसापि ह्यनीश्वरः'* वाक्यमें जिस अनधिकारका एवं अप्राकृत कवि श्रीजयदेव गोस्वामीने श्रीगीतगोविन्दमें *'यदि हरिस्मरणे सरसं मनः, यदि विलास-कलासु कुतूहलम्'* उक्तिमें जिस अधिकारका निर्णय किया है, क्या उसे प्राकृत पण्डित साहित्यिक, कवि, उपन्यासकार, इतिहासकार नहीं समझ सकते? श्रीभगवान्‌की असमोर्ध्व लीलाको मायिक मानकर उनको प्राकृत नायक-नायिकाके रूपमें मानकर भ्रमित होना और उन्हें मनुष्य समझना क्या बुद्धिमान् व्यक्तिका कार्य है? जड़-साहित्य-काव्य-इतिहास, स्थान-काल-पात्रके विषयमें जो विचार देते हैं या वर्णन करते हैं, उसपर विश्वास अथवा अविश्वास करने पर पारमार्थिकजनोंका कोई लाभ या हानि नहीं है। प्राकृत इतिहास और कालकी गिनती अर्थशास्त्रके अन्तर्गत है। युक्ति और नीति-आदर्शके द्वारा इन सभीका विचार करने पर आर्थिक और पारमार्थिक दोनों जगत्‌के कल्याणकी आशा की जाती है। आजकल बहुत भारतीय विद्वान् विदेशी शास्त्र—विज्ञान, भूगोल, इतिहास, पदार्थविद्या, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, भाषाविद्या आदिकी चर्चा करते हुए वास्तव तथ्यका अनुसन्धान करना चाहते हैं। यदि उन लोगोंके अध्ययनादिकी भावधारा पृथक् [अर्थात् उपरोक्त जड़विद्याके स्थानपर वेद आधारित विद्या द्वारा

वास्तव तथ्यका अनुसन्धान] होती, तो भूल-भ्रान्तिकी कोई सम्भावना नहीं रहती तथा ऋषि-अधिष्ठित भारतभूमिमें छलधर्म या अन्यधर्मोंका ग्रहणरूप महानर्थ प्रवेश ही नहीं करता।

जड़ इतिहासकार-साहित्यिक-कवि-भाषाविद् जनोंका तत्त्वानुसन्धान भी नास्तिकता है

'साम्प्रदायिकता' सभी देशोंमें है। यहाँ तक कि वृक्ष-तृण-झाड़ी-लता, पशु-पक्षियोंमें भी 'बचने-बढ़ने' की सर्वप्रथम प्रचेष्टा अथवा खाने-ठहरनेकी चिन्तारूप प्रादेशिकता विद्यमान है। प्राकृत देश, काल, भाषा, व्यवहार, आहार, विहार, पहनावे आदिमें पृथक्ता स्थापनके लिए ही भेद उदित होता है। मनुष्य समाजमें शरीर-घर, विद्या-धनोपार्जन, व्यापार, कृषि, शिल्पायन, जड़विज्ञान-चर्चा आदि बहुत प्रकारके कर्म हैं। पशु और मनुष्योंमें बहुत कर्मोंकी एकता है। समस्त प्रकारके आर्थिक कार्य करने पर भी यदि मनुष्यमें आत्मकल्याणकी चिन्ता नहीं रहती, तो उसे 'नरपशु' कहा जाता है। नित्यसिद्ध महात्मा, गुरुजन और श्रीभगवान्‌की गुण-महिमाको कम करना अथवा उनके चरित्र-संहारकी अपचेष्टा करना आजकलके तथाकथित विद्वान् और बुद्धिमान् समाजकी एक बहादुरी परिगणित होती है। हर कोई अपने द्वारा अर्जित समस्त प्रकारकी योग्यताओंको देश-जनताके कल्याणके लिए प्रयोग न कर व्यक्तिगत पाण्डित्य-प्रतिभा दिखानेमें नियुक्त कर रहे हैं, यही बड़े दुर्भाग्य और परितापका विषय है। वर्तमान समयमें श्रीभगवान् भी प्राकृत ऐतिहासिक, साहित्यिक, कवि और भाषाविद् जनोंकी आलोचनाके पात्र हो गये हैं। 'देशके ठाकुर' को फेंककर ऐसे लोग अन्ध साम्प्रदायिकतारूप तत्त्वानुसन्धान (Research) करने जाकर 'शिव बनाने जाकर बन्दर' बना रहे हैं।

समस्त प्रकारके आर्थिक कार्य करने पर भी यदि मनुष्यमें आत्मकल्याणकी चिन्ता नहीं रहती, तो उसे 'नरपशु' कहा जाता है। नित्यसिद्ध महात्मा, गुरुजन और श्रीभगवान्‌की गुण-महिमाको कम करना अथवा उनके चरित्र-संहारकी अपचेष्टा करना आजकलके तथाकथित विद्वान् और बुद्धिमान् समाजकी एक बहादुरी परिगणित होती है।

अध्यात्मवाद कल्पनासे उत्पन्न है, अतः वह नास्तिक्यवाद है

आजकल धर्मजगतमें बहुतसे लोग तत्त्वकी अन्वयपरक [अर्थात् शब्दोंके सकारात्मक एवं तर्कपूर्ण क्रमके अनुसार] चर्चा न कर गीता-भागवतादि शास्त्रोंकी आध्यात्मिक व्याख्याका श्रवण करनेके लिए विशेष आग्रही होते हैं। अध्यात्मवाद मनसे सम्बन्धित काल्पनिक क्रियाविशेष है, उसमें इतना आग्रह क्यों? शास्त्रकी अभिधा (मुख्य)-वृत्तिको स्वीकार न कर 'लक्षणा' (गौण) वृत्तिको ग्रहण करने पर हमारा मङ्गल कैसे हो सकता है? कल्पना एक Negative Idea मात्र है। प्रकृतिको जगत्-कर्त्री कहना शाक्तधर्म है। जड़में उत्तापकी [अर्थात् दृश्यमान जड़ीय पदार्थोंमें अधिक तेजवान सूर्यकी] प्रधानता स्थापन करना ही सौरवाद है। पशु-चैतन्यकी श्रेष्ठता [अर्थात् गणेशजीका सिर हाथीका है, अतः पशुके प्रतिनिधिके रूपमें पशु-चैतन्य गणेशजीकी श्रेष्ठता] स्थापन करना गाणपत्य-धर्म है। शुद्ध नर-चैतन्यकी

शिवरूपमें [अर्थात् मनुष्यकी शिवत्व प्राप्ति अवस्थामें जहाँ चेतनाकी चैतन्य अवस्था या जड़त्व अवस्थासे परे भीतरमें शुद्ध बोधकी जाग्रत अवस्था रहती है और जब बुद्धिका कर्तृत्व नहीं रहता] उपासना ही शैववाद है एवं जीवचैतन्यके द्वारा परम-चैतन्यकी [अर्थात् अद्वैतमतसे पञ्चोपासनाके अन्तर्गत विष्णु] उपासना ही विद्ध वैष्णव-धर्मके रूपमें प्रकाशित है।

परमार्थ-तत्त्वका ऐतिहासिक क्रम-विकास

हम शास्त्र और महाजनवाक्यको सर्वदा ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करनेके लिए बाध्य हैं। *'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'*—सिद्ध महात्माओंके हृदयरूपी गुफामें परमार्थ-तत्त्व संस्थापित है। श्रीगौरशक्तिस्वरूप श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने लिखा है—"परमार्थतत्त्व आदिकालसे अबतक क्रमशः स्पष्ट, सरल और संक्षेप होता आया है। ××× सरस्वतीके तटपर ब्रह्मावर्त्तकी कुशमय भूमिपर इस तत्त्वका जन्म हुआ। क्रमशः प्रबल होकर परमार्थतत्त्वने बद्रिकाश्रमकी हिमभूमिपर बाल्यलीला की। गोमतीके तटपर नैमिषारण्य क्षेत्रमें उसकी पौगण्डलीला हुई। द्राविड़देशमें कावेरी नदीके रमणीय तटपर उसके यौवन कार्य देखे गये। जगत्-पवित्रकारिणी जाह्नवीके तटपर नवद्वीप-नगरमें इस धर्मकी परिपक्व अवस्था देखी जाती है।"

जीवके प्रति प्रेमके ठाकुर श्रीगौरहरिके चरम उपदेश

श्रीमन्महाप्रभुने श्रील रूप गोस्वामीको प्रेम या प्रीतितत्त्वका उपदेश करते हुए बताया है—

तबे मूलशाखा बाड़ि' जाय वृन्दावन।
सुखे प्रेमफल-रस करे आस्वादन॥
एइ त परम फल—'परम-पुरुषार्थ'।
जाँर आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ॥

(श्रीचै॰च॰ मध्य १९/१६१,१६३-१६४)

[अर्थात् तब भक्तिलताकी मूल शाखा वृन्दावनकी ओर बढ़ जाती है और साधक प्रेमफलका रस आस्वादन करता है। यह भक्तिका परम फल अथवा परम पुरुषार्थ है, इसके सामने अन्य चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तिनकेके समान तुच्छ हैं।]

साधु-गुरुके उपदेश-निर्देशके अनुसार भक्तिलताके बीजस्वरूप श्रद्धाका रोपण करना होता है। कृष्णकी कृपासे जीव मायिक ब्रह्माण्डसे मुक्त होता है एवं भक्तकी कृपासे वह सिद्ध होता है। साधनभक्तिके बाद प्रेमरूप प्रयोजन-प्राप्ति एवं श्रीगोलोक वृन्दावनकी प्राप्ति होती है। भक्तिलता ही प्रेमफल प्रदान करती है एवं जीवात्मा उसका परम आनन्द पूर्वक सेवन करती है। यही पञ्चम पुरुषार्थ है। रूपानुग और रागात्मिक प्रेममें परस्पर वैशिष्ट्य विद्यमान हैं। गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र ही परम-उपास्य हैं एवं श्रीकृष्णनाम ही उन सर्वाकर्षक भगवान्‌को पानेका एक मात्र उपाय है। श्रीभगवान्‌के श्रीनाम-रूप-गुण-लीलाके श्रवण-कीर्तनादि अनुशीलनके द्वारा ही नामी श्रीभगवान् वशीभूत होते हैं। पञ्चाङ्ग साधन [साधुसङ्ग, नाम-सङ्कीर्तन, भागवत-श्रवण, मथुरावास और श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्तिसेवा] से ही कृष्णप्रेम प्राप्त होता है—यही निखिल विश्वके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी निगूढ़ शिक्षा और चरम-उपदेश है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-२८, संख्या-१से अनुदित)

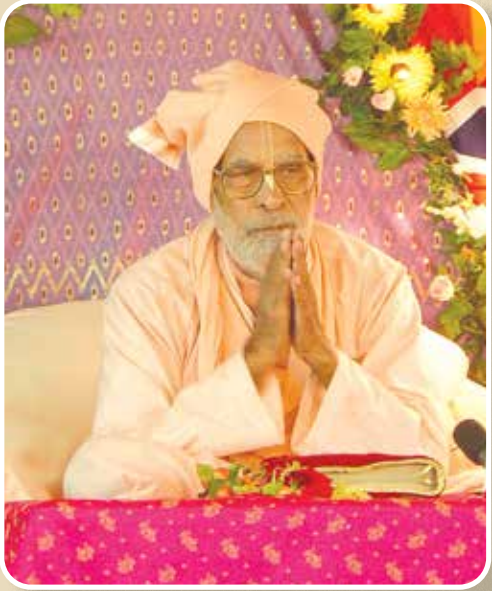

आम्नाय–विवृत्ति

[ब्रह्म–माध्व–गौड़ीय सम्प्रदायका विवरण]

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[द्वारा श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी
६७वीं शुभ-आविर्भाव-तिथिके अवसरपर
वर्ष-१९६४ ई॰ में लिखित आन्तरिक-श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि]

(वर्ष-१९, संख्या—५-८से आगे)

ब्रह्म–माध्व–गौड़ीय सम्प्रदायकी भागवत परम्पराके आचार्य

अब यहाँ ब्रह्म–माध्व–गौड़ीय सम्प्रदायकी भागवत–परम्पराके आचार्योंका संक्षेपमें परिचय दिया जा रहा है—

ब्रह्माजी—श्रीकृष्ण ही सर्वकारणकारण स्वयं भगवान् एवं धर्मके मूल हैं। इनके अंशांश पुरुषावतारके निःश्वाससे अनादि 'ब्रह्मविद्या' अर्थात् श्रुतिसमूह प्रकट हुए हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीको वही 'ब्रह्मविद्या' भगवान्से प्राप्त हुई थी।

देवर्षि नारद—देवर्षि नारद ब्रह्माजीके मानस पुत्र तथा परम भक्त हैं, इसी कारण ब्रह्माजीने उन्हें भगवान्से प्राप्त ब्रह्म–विद्याका उपदेश किया। श्रीनारदने ब्रह्माजीसे प्राप्त उपदेशोंका सार स्वरचित भक्तिसूत्र और नारद–पञ्चरात्र आदि ग्रन्थोंमें ग्रथित किया। साथ ही चतुःश्लोकी भागवतके रूपमें उसी ब्रह्म–विद्याका उपदेश भगवान् वेदव्यासको किया।

श्रीवेदव्यास—श्रीवेदव्यासजी देवर्षि नारदके शिष्य तथा भगवान्के शक्त्यावेशावतार हैं। श्रीवेदव्यासने वेद–मन्त्रोंका सङ्कलनकर विषयोंके अनुसार उन्हें ऋक्, साम, यजु और अथर्व—चार भागोंमें विभक्त किया, अष्टादश पुराणोंको प्रकटित किया, महाभारतकी रचना की तथा इन सबके समन्वय रूपमें वेदान्त सूत्र या ब्रह्मसूत्रकी रचना की। अन्तमें इनसे सन्तुष्ट नहीं होनेपर श्रीनारदजीके उपदेशानुसार समाधि–लब्ध ब्रह्मविद्याके सार–स्वरूप श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया। यह श्रीमद्भागवत—ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य, (अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां), महाभारतका तात्पर्य–निर्णय करनेवाला, गायत्रीका भाष्य तथा सम्पूर्ण वेदोंके सारभूत तात्पर्य द्वारा सम्वर्द्धित सर्वश्रेष्ठ अमल प्रमाण एवं शब्द–ब्रह्मका मूर्तिमान स्वरूप है। यह वेद–रूप कल्पतरुके हेयांश वर्जित वह रसमय अमृतफल है, जिसे आस्वादन करनेवाला अमर बन जाता है—भगवान्के चरणकमलोंके प्रेमरूप अथाह समुद्रमें सदाके लिये निमज्जित हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें श्रीभागवत–धर्म (अर्थात् सनातन–धर्म या आत्मधर्म) रूप ब्रह्मविद्याका वर्णन है। यही जीवमात्रका धर्म है। श्रीमद्भागवत ब्रह्म–सम्प्रदायका मूलभूत सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ है। श्रीवेदव्यासने इसका उपदेश सर्वप्रथम शुकदेव मुनिको किया। कालान्तरमें श्रीवेदव्यासने बदरिकाश्रममें श्रीमध्वाचार्यको भी इसका उपदेश प्रदान किया।

श्रीमध्वाचार्य—श्रीमध्वाचार्य दक्षिण भारतमें उडुपीके समीपवर्ती पाजकाक्षेत्र नामक ग्राममें ब्राह्मण वंशमें सन् १२३८ ई॰ में आविर्भूत हुए थे। त्रेतामें आविर्भूत हनुमान, द्वापरमें आविर्भूत भीम तथा कलियुगमें आविर्भूत मध्वाचार्यजी प्रधान वायु अथवा मुख्य प्राणके अवतार हैं। बारह वर्षकी आयुमें संन्यास ग्रहणकर ये भारतके विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए बदरिकाश्रममें पहुँचे। इनकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवान् व्यासदेवने इनको दर्शन देकर भागवत-धर्मका उपदेश किया तथा कृपापूर्वक दीक्षा देकर स्वकृत ब्रह्मसूत्रके भाष्यकी रचनाकर भागवत-धर्मका प्रचार करनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर श्रीमध्वाचार्यने बदरिकाश्रमसे उडुपी लौटकर ब्रह्मसूत्रका अणुभाष्य (बृहद्), अणुभाष्य (संक्षिप्त), अनुव्याख्यानम्, गीता-भाष्य, तत्त्व-विवेक, ऋक्-भाष्य, ईश-केन आदि ग्यारह प्रधान उपनिषदोंके भाष्य, भागवत-तात्पर्य, महाभारत-तात्पर्य आदि अनेक उच्चश्रेणीके ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीमध्व सम्प्रदायमें बहुत प्रचारित इस निम्नलिखित श्लोकमें श्रीमध्व-सिद्धान्तोंका संक्षेपमें उल्लेख पाया जाता है—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतमः सत्यं जगत्तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥

श्रीमध्वाचार्यके मतसे श्रीहरि—कृष्ण ही परम तत्त्व हैं; जगत् [मिथ्या नहीं, अनित्य है किन्तु] सत्य है; ईश्वर, जीव और जड़में परस्पर तत्त्वतः नित्यभेद है, जीव-समूह श्रीहरिके अनुचर अर्थात् सेवक हैं, जीवोंमें परस्पर अधिकारका तारतम्य वर्तमान है, स्वरूपगत आनन्दकी अनुभूति अर्थात् विष्णुवांघ्रिलाभः (भगवान् श्रीविष्णुके चरणकमलोंकी सेवा-प्राप्ति) ही मुक्ति है, अमला-भक्ति ही श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा-प्राप्ति रूप मुक्तिका एकमात्र साधन है। शब्द, अनुमान और प्रत्यक्ष—ये तीन प्रमाण हैं, श्रीहरि अर्थात् श्रीकृष्ण ही अखिल-आम्नायवेद्य अर्थात् सम्पूर्ण वेदोंके और वेदमूलक शास्त्रोंके प्रतिपाद्य तत्त्व हैं।

मध्व सम्प्रदायका प्रधान मठ उडुपी (दक्षिण भारतके कर्नाटक राज्य) में है तथा उसके पास ही उसके चारों ओर अन्य आठ शाखामठ भी हैं। श्रीमध्वाचार्यके पश्चात् उनके विभिन्न विद्वान एवं योग्य आचार्य शिष्योंने उनके सिद्धान्तोंका तथा उपासना पद्धतिका शिष्य-परम्परासे भारतमें सर्वत्र ही प्रचार किया है और कर रहे हैं।

श्रीपद्मनाभ तीर्थ—(१३१८-१३२४ ई॰ तक आचार्य) श्रीपद्मनाभ तीर्थ श्रीमध्वाचार्यके शिष्य एवं सम्प्रदायके अनेक प्राचीन ग्रन्थोंके प्रधान टीकाकार हैं। इन्होंने श्रीमध्वाचार्यके दश प्रकरण, अणुभाष्य, गीताभाष्य आदि ग्रन्थोंपर टीकाएँ लिखी हैं।

श्रीनरहरितीर्थ—(१३२४-१३३३ ई॰ तक आचार्य) श्रीनरहरितीर्थ श्रीमध्वाचार्यके दीक्षित शिष्य एवं श्रीपद्मनाभ तीर्थके शिक्षा शिष्य थे। इन्होंने श्रीपद्मनाभ तीर्थको श्रीमध्वाचार्यके प्रतिनिधि रूपमें स्वीकार कर शिक्षा गुरुके रूपमें उनकी सेवा की। इनके द्वारा रचित १५ ग्रन्थोंमें-से गीता भाष्य एवं भावप्रकाशिका ही संरक्षित हैं।

श्रीमाधवतीर्थ—(१३३३-१३५० ई॰ तक आचार्य) श्रीमाधवतीर्थ श्रीमध्वाचार्यके पश्चात् तृतीय आचार्य हुए तथा ये उन्हींके शिष्य थे। इन्होंने ऋक्, साम और यजुर्वेदपर टीकाएँ लिखी हैं।

श्रीअक्षोभ्यतीर्थ—(१३५०-१३६५ ई॰ तक आचार्य) श्रीअक्षोभ्यतीर्थ श्रीमध्वाचार्यके शिष्य थे। इन्होंने माध्वतत्त्वसार-संग्रह नामक एक ही ग्रन्थकी रचना

की। इन्होंने शृङ्गेरीके तत्कलीन मठाधीश प्रसिद्ध विद्वान शङ्कर-मतावलम्बी विद्यारण्यको शास्त्रार्थमें पराजितकर अद्वैतवाद रूपी वृक्षको समूल उखाड़ फेंका था। श्रीरामानुज सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य वेदान्त देशिकाचार्यजी इस शास्त्रार्थके मध्यस्थ थे।

श्रीजयतीर्थसे श्रीब्रह्मण्यतीर्थ—(१३६६-१४६७ ई॰ तकके आचार्य) श्रीअक्षोभ्यतीर्थके शिष्य श्रीजयतीर्थ उडुपी स्थित उत्तरादिमठके मठाधीश थे। इन्होंने न्यायसुधा, तत्त्व-प्रकाशिका, दश-प्रकरण टीका, षटप्रश्न टीका, ईशावास्य टीका, गीताभाष्य टीका, गीता-तात्पर्य टीका, भागवत-तात्पर्य टीका आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर अद्वैतवादके विचारोंका सम्पूर्णरूपसे खण्डनकर तत्त्ववादकी पुष्टि की है।

श्रीजयतीर्थके पश्चात् क्रमशः श्रीज्ञानसिन्धुतीर्थ, श्रीदयानिधितीर्थ और श्रीविद्यानिधितीर्थ (१४३५-१४४४ ई॰) सम्प्रदायके आचार्य हुए। श्रीविद्यानिधितीर्थके शिष्य श्रीराजेन्द्रतीर्थ और उनके शिष्य श्रीजयधर्मतीर्थ हुए। श्रीजयधर्मतीर्थके शिष्य श्रीपुरुषोत्तमतीर्थ और उनके शिष्य श्रीब्रह्मण्यतीर्थ हुए।

श्रीव्यासतीर्थ—(प्रकटकाल १४६०-१५३९ ई॰) श्रीव्यासतीर्थ श्रीब्रह्मण्यतीर्थके शिष्य और सम्प्रदायके अतिशय प्रतिभाशाली धुरन्धर विद्वान् आचार्य थे। श्रीअक्षोभ्यतीर्थके किन्हीं एक शिष्यके द्वारा स्थापित व्यासराय मठके संन्यासी होनेके कारण यह श्रीव्यासरायके नामसे भी जाने जाते हैं। ये विजयनगरके राजा श्रीकृष्णदेवाचार्यके गुरु थे। इन्होंने तर्क-ताण्डव, तात्पर्य चन्द्रिका, न्यायामृत, खण्डनत्रय-मन्दारमञ्जरी और तत्त्वविवेक मन्दारमञ्जरी आदि ग्रन्थोंकी रचनाकर अद्वैतवादियोंकी सत्ताको ही जगत्से मिटा देनेका उपक्रम कर दिया। श्रीजीव गोस्वामीने तत्त्व-सन्दर्भमें श्रीविजयध्वजतीर्थ एवं श्रीव्यासतीर्थको वेद-वेदार्थविद-श्रेष्ठ कहा है तथा 'सर्वसम्वादिनी' और वैष्णवतोषणीमें 'न्यायामृत' ग्रन्थका उल्लेख किया है।

श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ (प्रकटकाल १४२०-१४८७ ई॰) और **श्रीमाधवेन्द्रपुरी**—(लगभग १४०० ई॰ आविर्भावकाल) श्रीव्यासतीर्थके पश्चात् श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ आचार्य हुए। इन श्रीलक्ष्मीपतितीर्थके ही शिष्य हैं—श्रीमाधवेन्द्रपुरी। श्रीलक्ष्मीपतितीर्थसे ही श्रीमाधवेन्द्रद्रपुरीकी शाखा प्रकट हुई। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि मध्वसम्प्रदायके संन्यासी तो तीर्थ उपाधियुक्त होते हैं, फिर श्रीमाधवेन्द्रजी मध्वसम्प्रदायके अन्तर्गत होनेपर भी पुरी कैसे हो गए? उक्त शङ्काका समाधान इस प्रकार है। मध्वसम्प्रदायके (१) उत्तरादि (२) मालमार (३) आदमार (४) कृष्णपुर (५) पुत्तगे (६) शीरुरु (७) सौदे (८) कानुर और (९) पेजावर नामक नौ मठोंमें से श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ उत्तरादिमठके मठाधीश थे। इनमेंसे केवल उत्तरादि मठका ही सम्बन्ध उत्तर भारतसे था। इस सम्प्रदायमें ऐसा नियम है कि प्रत्येक मठमें एक मठाधीश और दूसरा उनका उत्तराधिकारी—ये दो ही संन्यासी विद्यमान रहते, तीसरे किसीको संन्यास नहीं दिया जाता था। दूसरी बात, उस समय वे लोग कुछ सङ्कीर्ण विचारके कारण समस्त उत्तर भारतके वासियोंको (अनाधिकारी मानकर) किसी भी परिस्थितिमें संन्यास वेश नहीं देते थे।

श्रीमाधवेन्द्रपुरी बङ्गालमें आविर्भूत हुए थे। श्रीलक्ष्मीपतिके दीक्षित शिष्य होनेपर भी तथा बार-बार अनुरोध करनेपर भी उनको उत्तरादि मठसे संन्यास वेश न मिला। तब अन्तमें उन्होंने श्रीमन्मध्वाचार्यके आदर्शका अनुसरणकर किसी 'पुरी' उपाधिधारी दसनामी (शङ्कर-सम्प्रदायी) संन्यासीसे संन्यास-वेश ग्रहण कर लिया। परन्तु इससे वे शङ्कर सम्प्रदायी संन्यासी नहीं कहे जा सकते। कारण, यदि श्रीमध्वाचार्य एक शङ्कर-पन्थी दसनामी संन्यासीसे एकदण्ड संन्यास ग्रहण करके भी वैष्णव-संन्यासी कहे जा सकते हैं, तब केवल श्रीमाधवेन्दपुरीको ही उसी प्रकार शङ्करानुयायी एकदण्डी संन्यासीसे संन्यास वेश ग्रहण करनेके कारण मध्वसम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माननेमें बाधा क्या है? वैष्णव संन्यासमें तो एक सौ आठ नामोंमें-से किसी एक नामको ग्रहण करनेकी विधि है। फिर, 'पुरी' तो प्रसिद्ध दसनामोंके अन्तर्गत आता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी उसी प्रकारसे श्रीईश्वरपुरीसे दीक्षा लेकर बादमें श्रीकेशव भारतीसे (किसी 'भारती' उपाधिधारी शङ्कर संन्यासीसे) संन्यास वेश ग्रहण किया था, परन्तु

इससे उनको कोई मायावादी संन्यासी नहीं कहता।

अतएव श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद माध्व–मतानुयायी वैष्णव संन्यासी ही हैं, क्योंकि साम्प्रदायिक शिष्यत्वमें वेशसे दीक्षाका ही अधिक महत्व है। दीक्षागुरु और संन्यास–वेशदाता एक व्यक्ति भी हो सकते हैं, और किसी अवस्थामें दो भी हो सकते हैं।

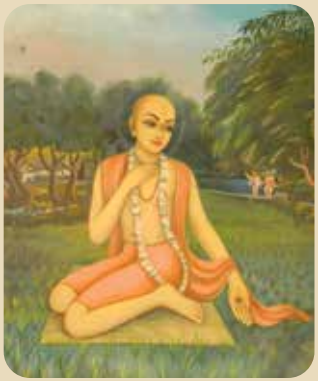

श्रीमाधवेन्द्रपुरी भक्तिकल्पतरुके प्रथम अङ्कुर हैं। श्रीईश्वरपुरीके द्वारा उस वृक्षका अंकुर पुष्ट हुआ और स्वयं श्रीचैतन्यमाली इस वृक्षके स्कन्धके रूपमें प्रकाशित हुए (श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ९.१०–११)। अर्थात् उस भक्तिकल्पतरुके पूर्णरूपेण पल्लवित–पुष्पित एवं फलोंसे युक्त तथा अपने सौरभसे विश्वको आनन्दित करनेवाली अवस्था श्रीचैतन्यमहाप्रभु हैं।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीने ही श्रीगिरिराज गोवर्द्धनपर प्रसिद्ध श्रीगोपाल (श्रीनाथजी) की स्थापनाकर उनकी सेवा–पूजाकी व्यवस्था की थी। तदनन्तर यह श्रीविग्रह श्रीनाथद्वारामें श्रीवल्लभसम्प्रदायके गोस्वामियोंके द्वारा आज भी सेवित हो रहे हैं।

श्रीमाधवेन्द्रपुरी विद्वान एवं रसिक भक्त चूड़ामणि थे। वे विप्रलम्भ रसके प्रथम आचार्य माने जाते हैं। श्रील रूप गोस्वामी द्वारा सङ्कलित पद्यावली आदि ग्रन्थोंमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी द्वारा रचित अनेक पद्य पाये जाते हैं।

श्रीईश्वरपुरी और श्रीअद्वैताचार्य इन्हीं श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीलक्ष्मीपतितीर्थके शिष्य होनेपर भी अपने गुरुभ्राता श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रति गुरुबुद्धि रखते थे।

श्रीईश्वरपुरी (आविर्भाव १४३६ ई०)—श्रीईश्वरपुरी श्रीमाधवेन्द्रपुरीके दीक्षित एवं संन्यासी शिष्योंमें सर्वप्रधान हैं। स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने गयामें इन्हींके निकट दीक्षा ग्रहण करनेकी लीला प्रकट की। ये भक्तिकल्पतरुके किञ्चित् पल्लवित बालवृक्ष (पौधे) माने जाते हैं। ये सर्वदा भगवत् प्रेमावेशमें निमग्न रहा करते थे। इनके द्वारा रचित 'कृष्णलीलामृत'—ग्रन्थ भक्तिरसका एक उच्चकोटिका ग्रन्थ माना जाता है। श्रीरूपगोस्वामीकृत पद्यावलीमें श्रीईश्वरपुरी द्वारा रचित कतिपय श्लोक पाये जाते हैं।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु (आविर्भाव १४८६ ई०)—श्रीचैतन्यमहाप्रभु अवतारी पुरुष स्वयं भगवान् श्रीनन्दनन्दन कृष्ण ही हैं, जो आश्रय जातीय श्रीराधाभाव—उन्नत उज्ज्वल मधुर रसका आस्वादनकर जगत्में उसकी 'श्री' का दान करनेके लिये निज अभिन्न पराशक्ति महाभावस्वरूपिणी श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिसे युक्त होकर अवतीर्ण हुए। श्रीचैतन्यमहाप्रभु श्रीनवद्वीप धामके अन्तर्गत श्रीमायापुरमें (गङ्गाके पूर्वी तटपर) आविर्भूत हुए थे। इनके पिताका नाम श्रीजगन्नाथमिश्र और माताका नाम श्रीशचीदेवी है। इन्होंने २४ वर्ष तक गृहस्थलीलामें नाना प्रकारकी अद्भुत लीलाओं द्वारा सबको कृष्ण–प्रेम प्रदान किया तथा गयामें श्रीईश्वरपुरीपादसे दीक्षा ग्रहण की। अन्तमें इन्होंने काटोया(कटवा)में श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद द्वारा दीक्षित, किन्तु शङ्कर सम्प्रदायके किसी 'भारती' संन्यासी द्वारा संन्यास ग्रहण करनेवाले, केशव भारतीसे (पहले उन केशव भारतीके कानोंमें स्वयं संन्यास मन्त्र प्रदानकर बादमें उसी) मन्त्रको श्रवण किया। श्रीचैतन्य महाप्रभु संन्यास ग्रहणकर प्रेमावेशमें मत्त होकर शान्तिपुर होते हुए कुछ पार्षदोंके साथ श्रीजगन्नाथपुरी धाममें पधारे। वहाँ शङ्कर सम्प्रदायके प्रकाण्ड विद्वान श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको, जो सारे भारतमें शाङ्कर वेदान्तके अद्वितीय पारङ्गत पण्डित माने जाते थे—कुछ ही घण्टोंके शास्त्रार्थमें पराजितकर उन्हें परमप्रेमी भक्त एवं अपना अनुयायी बना लिया। तदनन्तर श्रीचैतन्य महाप्रभुने छह वर्षतक दक्षिण और उत्तर–भारतमें भ्रमण किया। मथुरा–वृन्दावनमें कुछ दिन रहकर वृन्दावन, राधाकुण्ड, काम्यवन आदि स्थानोंको प्रकट किया तथा सर्वत्र भ्रमण करते समय काशीके ६०,००० मायावादी संन्यासियोंको

तथा उनके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीको—जो उत्तर भारतमें शङ्करमतके सर्वश्रेष्ठ एवं प्रख्यात वेदान्ती आचार्य माने जाते थे—शास्त्रार्थमें पराजितकर उन्हें उनके शिष्यों सहित वैष्णव बना दिया। श्रीमन्महाप्रभुने बङ्गालके नवाबके प्रधानमन्त्री श्रीसनातनको काशीमें तथा वित्तमन्त्री श्रीरूपको प्रयागमें क्रमशः वैधी एवं रागानुगा भक्तिका उपदेश दिया तथा उनमें शक्ति-सञ्चारकर उन दोनोंको व्रजके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करने, श्रीविग्रहोंको प्रकट करने तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थोंकी रचनाकी आज्ञा दी। श्रीचैतन्य महाप्रभुने सर्वत्र ही हरिनाम-सङ्कीर्तन एवं शुद्धभक्तिका प्रचार किया। श्रीमन्महाप्रभुके संन्यासके अन्तिम अठारह वर्ष पुरीमें ही महाभावावेशमें व्यतीत हुए। इन्हीं अठारह वर्षोंमें समय-समयपर समग्र भारतके वैष्णव भक्त एवं आचार्यगण इनके दर्शनों तथा उपदेशोंके लिये पुरी पधारे। इस अवस्थामें इनमें महाभावके अधिरूढ़ और अन्यान्य सर्वोच्च प्रेमके जो विकार आदि लक्षित हुए, वे श्रीमद्भागवत आदि लीलारसके उत्कृष्ट ग्रन्थोंमें अथवा पूर्वाचार्योंमें या भगवतवतारोंमें—कहीं भी लक्षित नहीं हुए हैं। इनके भावों एवं सिद्धान्तोंको श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप-सनातन-जीव गोस्वामियों, श्रीकृष्णदास कविराज, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीबलदेव विद्याभूषण आदि पार्षदोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें संग्रह किया है। निम्नलिखित श्लोकमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्तोंका संक्षेपमें परिचय पाया जाता है—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिम्
तद्भिन्नांशांश्चजीवान्प्रकृति-कवलितान्तद्विमुक्तांश्चभावाद्।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्तिम्
साध्यं तत्प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

उक्त श्लोकका भावानुवाद—श्रीमन्महाप्रभुकी ये दस शिक्षाएँ हैं—

(१) आम्नाय-वाक्य ही प्रधान प्रमाण हैं। आम्नायके द्वारा निम्नलिखित नौ सिद्धान्त प्रतिपादित होते हैं।
(२) कृष्णस्वरूप हरि ही परम तत्त्व हैं।
(३) वे सर्वशक्तिमान हैं।
(४) वे अखिल-रसामृत-सिन्धु हैं।
(५) जीव-समूह हरिके विभिन्नांश तत्त्व हैं।
(६) तटस्थ गठन वशतः जीवसमूह बद्धदशामें मायारूपी प्रकृति द्वारा बद्ध हैं।
७) तटस्थ गठन वशतः जीवसमूह मुक्तदशामें मायारूपी प्रकृतिसे मुक्त हैं।
(८) जीव-जड़ात्मक अखिल विश्वका हरिसे युगपत् भेद और अभेद है।
(९) शुद्धभक्ति ही जीवके लिये एकमात्र साधन है।
(१०) शुद्ध कृष्ण-प्रीति ही जीवके लिये साध्य है।

श्रीमन्महाप्रभुका दार्शनिक सिद्धान्त 'अचिन्त्य-भेदाभेद' के नामसे प्रसिद्ध है। उपासना जगत्में उन्नत-उज्ज्वल राधाभावकी पारकीय-विप्रलम्भ रसमयी उपासना श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी एक विशेष देन है। यह पद्धति सम्प्रदायमें 'श्रीरूपानुग भजन-पद्धति' के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीमन्महाप्रभुके सिद्धान्तों एवं उपासना प्रणालीका प्रचार श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथभट्ट, श्रीजीव, श्रीगोपालभट्ट तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी नामक छह गोस्वामियोंने विशेष रूपसे किया है।

श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी—श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके मुख्य अन्तरङ्ग पार्षद थे। कोई भी पद, ग्रन्थ, काव्य या नाटकादि पहले इनको दिखलाकर और इनकी स्वीकृति होनेपर बादमें श्रीमन्महाप्रभुजीको सुनाया जाता था। श्रीमन्महाप्रभुकी अन्तिम लीलामें महाभावावेशकी अवस्थामें ये सर्वदा उनके निकट रहते थे तथा उनके भावों एवं अद्भुत चरित्रोंको कड़चों (दैनिन्दनी) में लिपिबद्ध करके रखते थे। ये कड़चे ही 'श्रीचैतन्यचरितामृत' एवं श्रीमन्महाप्रभु सम्बन्धी ग्रन्थोंके मूल उपादान (स्रोत) हैं।

श्रीरूप एवं सनातन गोस्वामी—श्रीरूप एवं सनातन गोस्वामी नामक दोनों भाई अपने पूर्व जीवनमें बङ्गालके नवाब हुसैनशाहके मन्त्री थे। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपा प्राप्तकर ये संसार छोड़कर वृन्दावनमें रहकर उनके आनुगत्यमें भजन करते थे। श्रीसनातन गोस्वामी (आविर्भाव १४८८ ई०) तथा श्रीरूप (आविर्भाव १४८९ ई०) गोस्वामी सगे भाई थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातन तथा श्रीरूपमें

शक्तिका सञ्चार करके उन्हें कुछ आदेश प्रदान किये। श्रीमन्महाप्रभुके आदेशानुसार इन्होंने लुप्तप्रायः व्रजमण्डलके तीर्थों (कृष्णकी लीला-स्थलियों) को प्रकट किया, श्रीभगवत् विग्रहोंकी स्थापनाकर सेवा-पूजाकी व्यवस्था की तथा श्रीमन्महाप्रभुके सिद्धान्तोंके प्रतिपादक अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचनाएँ की। श्रीसनातन गोस्वामीने (१) बृहद्भागवतामृत (२) हरिभक्तिविलास (३) श्रीकृष्णलीला-स्तव और (४) बृहद्वैष्णव तोषणी (भागवतके दशम स्कन्धकी टीका) आदि ग्रन्थोंकी रचना की है। श्रीरूपगोस्वामीके अनेक ग्रन्थोंमेंसे—(१) ललितमाधव, (२) विदग्धमाधव, (३) भक्तिरसामृतसिन्धु, (४) उज्ज्वलनीलमणि, (५) लघुभागवतामृत, (६) उद्धव-सन्देश, (७) हँसदूत, (८) गोविन्दविरुदावलि, (९) मथुरा माहात्म्य, (१०) पद्यावली, (११) राधाकृष्णगणोद्देश-दीपिका, (१२) निकुञ्जरहस्यस्तव, (१३) दानकेलि-कौमुदी, (१४) नाटक-चन्द्रिका (१५) स्तवमाला आदि प्रमुख हैं। श्रीरूपगोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक आचार्य हैं, इसी कारण गौड़ीय सम्प्रदायको श्रीरूपानुग सम्प्रदाय भी कहा जाता है।

श्रीजीव गोस्वामी (आविर्भाव १५१३ ई०)—श्रीजीव श्रीरूप-सनातनके छोटे भाई श्रीअनुपमके पुत्र तथा श्रीरूप गोस्वामीके दीक्षित शिष्य थे। श्रीजीव गोस्वामी अद्भुत तेजस्वी, प्रखर मेधावी, प्रकाण्ड (गम्भीर) एवं अद्वितीय दार्शनिक विद्वान आचार्य थे। श्रीजीव गोस्वामीने काशीमें श्रीमधुसूदन वाचस्पतिसे वेद-वेदान्त-उपनिषद् और अन्यान्य शास्त्रोंका विधिवत् अध्ययनकर वृन्दावनमें श्रीरूप-सनातनके श्रीचरणोंमें श्रीमद्भागवत और अन्यान्य भक्तिग्रन्थोंका अध्ययन किया। श्रीजीव श्रीरूप-सनातनके पश्चात् गौड़, व्रज एवं क्षेत्र-मण्डलके गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके सार्वभौम आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित हुए। श्रीजीव गोस्वामीने वृन्दावनमें श्रीराधा-दामोदर श्रीविग्रहकी सेवा प्रकट की है। इन्होंने अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना भी की है। ये ग्रन्थसमूह गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके सिद्धान्तोंके प्रकाश-स्तम्भ हैं, जिनमें इनकी दार्शनिक विद्वता पाठकोंको पद-पदपर आश्चर्यचकित करती है। श्रीजीव गोस्वामी द्वारा रचित ग्रन्थोंमेंसे कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—षट्सन्दर्भ, सर्वसंवादिनी, हरिनामामृत व्याकरण, सूत्रमालिका, धातु-संग्रह, भक्तिरसामृतशेष, श्रीमाधव-महोत्सव, श्रीगोपालचम्पू, सङ्कल्पकल्पद्रुम, श्रीगोपालविरुदावलि, गोपालतापनी टीका, ब्रह्मसंहिता टीका, भक्तिरसामृतसिन्धुकी टीका, उज्ज्वलनीलमणिकी टीका, गायत्री-भाष्य, क्रम-सन्दर्भ (भागवतकी टीका), श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका आदि।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी (आविर्भाव १४९४ ई०)—श्रीरघुनाथदास गोस्वामी श्रीस्वरूप दामोदरके प्रिय पात्र, श्रीरूपानुग भजनके मूर्तिमान विग्रह एवं श्रीमन्महाप्रभुके पार्षद तथा छह गोस्वामियोंमें अन्यतम थे। ये धनाढ्य जमींदारकी एकमात्र सन्तान होकर भी युवावस्थामें ही सब कुछ छोड़कर श्रीगौरसुन्दरके चरणोंमें पुरीमें उपस्थित हो गये। श्रीमन्महाप्रभुने इन्हें श्रीस्वरूप दामोदरके हाथोंमें सौंप दिया। इनका वैराग्य एवं भजन-निष्ठा प्रसिद्ध एवं आदर्श-स्थानीय है। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके रचित ग्रन्थ हैं—श्रीस्तवावली, श्रीदानचरित और श्रीमुक्ताचरित।

श्रीकृष्णदास कविराज—श्रीरूप-रघुनाथ एवं श्रीजीवगोस्वामीके प्रियपात्र श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके रसिक एवं दार्शनिक विद्वान आचार्य हैं। वे अप्राकृत कविकुल सम्राट होनेके कारण 'कविराज' नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका आविर्भाव बङ्गालके वर्द्धमान जिलेके झामटपुर ग्राममें सन् १४९६ ई० में हुआ था। इन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीगोविन्द-लीलामृत ग्रन्थों एवं (कृष्णकर्णामृत नामक ग्रन्थकी) सारङ्गरङ्गदा टीका आदि की रचना की। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो इनकी विपुल उज्ज्वल कीर्तिका सर्वप्रधान आधारपीठ है तथा वैष्णवोंके कण्ठका हार स्वरूप है।

श्रीनरोत्तमदास ठाकुर—श्रीनरोत्तमदास ठाकुर श्रीमन्महाप्रभुके कृपापात्र, व्रजमण्डलके प्रसिद्ध भजनपरायण वैष्णव-सन्त श्रीलोकनाथ गोस्वामीके दीक्षित शिष्य थे।

श्रीनरोत्तमदास ठाकुरको श्रीजीव गोस्वामीके निकट साम्प्रदायिक शास्त्रों एवं भजन-प्रणालीकी शिक्षा प्राप्त हुई थी। श्रीनिवासाचार्य एवं श्रीश्यामानन्द प्रभु इनके जीवनसङ्गी थे। इन तीनोंने मिलकर गोस्वामी ग्रन्थोंको व्रजसे बङ्गालमें लाकर उनका सर्वत्र प्रचार किया। श्रीनरोत्तमदास ठाकुरने श्रीमन्महाप्रभुके पश्चात् केवल बङ्गालको ही नहीं, अपितु मणिपुर, आसाम, उड़ीसा और व्रजमण्डलको भी हरि-सङ्कीर्तन की बाढ़में पुनः आप्लावित कर दिया। बङ्गालके राजशाही जिलेमें खेतुरी नामक ग्राममें राजपरिवारमें ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें [१५२० ई॰ में] इनका आविर्भाव हुआ था। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशयकी रचनाओंमें 'प्रार्थना एवं प्रेमभक्तिचन्द्रिका' प्रसिद्ध हैं। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर कीर्त्तनके गड़ानहाटी नामक स्वरके प्रवर्तक हैं। ये नित्यानन्दकी शक्तिके रूपमें प्रसिद्ध हैं। खेतुरीमें इनके द्वारा स्थापित श्रीविग्रहोंकी सेवा-पूजा आज भी होती है।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायके अद्वितीय रसिक एवं प्रकाण्ड दार्शनिक आचार्य थे। साथ ही परम भक्त एवं वैष्णव कवि चूड़ामणि थे। इन्होंने वृन्दावनमें श्रीगोकुलानन्दजीकी सेवा प्रकट की है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बङ्गालके नदिया जिलेमें देवग्राममें १६३८ ई॰ में आविर्भूत हुए थे। इन्होंने स्वरचित अनेक ग्रन्थोंसे गौड़ीय वैष्णव-साहित्यके भण्डारकी वृद्धि की है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित ग्रन्थोंमें श्रीकृष्णभावनामृत, श्रीगौराङ्ग-लीलामृत, स्तवामृतलहरी, भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु, उज्ज्वलनीलमणि-किरण, भागवतामृत-कणा, रागवर्त्मचन्द्रिका, माधुर्य-कादम्बिनी, ऐश्वर्य-कादम्बिनी, चमत्कार-चन्द्रिका आदि प्रसिद्ध हैं। उपरोक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने श्रीभागवतकी सारार्थदर्शिनी टीका, गीताकी सारार्थवर्षिणी टीका, उज्ज्वलनीलमणिकी आनन्द-चन्द्रिका टीका, भक्तिरसामृतसिन्धुकी भक्तिसार-प्रदर्शिनी टीका, ब्रह्मसंहिता टीका, चैतन्यचरितामृत टीका आदि अनेकों टीकाओंकी रचना की है।

श्रीबलदेव विद्याभूषण—श्रीबलदेव विद्याभूषण गौड़ीय वेदान्ताचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्होंने पुरीमें पण्डित श्रीराधादामोदरसे तथा वृन्दावनमें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके आनुगत्यमें साम्प्रदायिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया। उड़ीसाके बालेश्वर जिलेमें रेमुणाके निकटवर्ती किसी ग्राममें इनका ईसाकी अठारहवीं शताब्दीमें आविर्भाव हुआ था। श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी वृद्धावस्थामें उनकी आज्ञानुसार जयपुरमें साम्प्रदायिक विवादमें स्वसम्प्रदायके पक्षका समर्थन करनेके लिये पधारे और वहाँपर अन्यान्य सम्प्रदायके आचार्योंको विराट सभामें निरुत्तरकर गौड़ीय-वैष्णवोंकी लुप्तप्राय प्रतिष्ठाकी पुनः स्थापना की। इस शास्त्रार्थके समय श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीगोविन्ददेवके कृपा-आदेशसे ब्रह्मसूत्रपर श्रीगोविन्दभाष्यकी रचनाकर गौड़ीय-वैष्णवोंको गौरान्वित किया। श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु बड़े प्रख्यात नैयायिक एवं वैदान्तिक पण्डित एवं प्रतिभाशाली आचार्य थे। श्रीगोविन्दभाष्यके अतिरिक्त षट्सन्दर्भकी टीका, लघु-भागवतामृतकी टीका, सिद्धान्तरत्न, वेदान्त-स्यमन्तक, प्रमेयरत्नावली, सिद्धान्त-दर्पण, नाटकचन्द्रिका, श्यामानन्दशतक-टीका, साहित्यकौमुदी, काव्यकौस्तुभ, छन्दकौस्तुभ, वैष्णवानन्दिनी (भागवतकी टीका), गोपालतापनी एवं गीताका भाष्य एवं अन्यान्य ग्रन्थोंकी रचनाकर इन्होंने गौड़ीय-वैष्णव साहित्यकी प्रचुर सेवा एवं उसका संवर्धन किया है।

श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज—श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज अपने समयके गौड़-व्रज-क्षेत्रमण्डलके गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके सार्वभौम आचार्य हुए हैं। ये लगभग १४० वर्ष तक जगत्में प्रकट रहे। पहले ये व्रजमें भजन करते थे और फिर बादमें गौड़-मण्डलमें कुलिया नवद्वीपमें भजनकुटी बनाकर भजन करने लगे। इन महापुरुषने ही गङ्गाके पूर्वी तटपर स्थित श्रीचैतन्य महाप्रभुके लुप्तप्राय जन्मस्थान श्रीमायापुरको निर्दिष्ट किया। इन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरको सम्प्रदाय-रहस्य, भजनप्रणाली एवं शास्त्रके

निगूढ़ तत्त्वोंका उपदेश प्रदानकर उन्हें शुद्धभक्ति प्रचारके लिये उत्साहित किया था।

श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर—ये आधुनिक युगमें श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित विशुद्ध भागवत-धर्मके प्रचारके मूल पुरुष हैं। विशाल गौड़ीय साहित्य सृजनकर भक्तिधाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेके कारण ये सप्तम गोस्वामीके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्होंने पूर्वाचार्योंके संस्कृत ग्रन्थोंका सहज-सरल प्रचलित भाषाओंमें अनुवादकर, टीका एवं भाष्यकर, उनका सार-संग्रहकर लगभग एक सौ ग्रन्थोंकी रचनाकर गौड़ीय-वैष्णव साहित्यको समृद्ध किया है। इनकी कृपासे उच्च-शिक्षित एवं सम्भ्रान्त लोग गौड़ीय-सम्प्रदायमें योगदान देने लगे। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने श्रीजीव गोस्वामीके पश्चात् श्रीविश्व-वैष्णव राजसभाका पुनः सञ्चालन किया। पारमार्थिक मासिक—श्रीसज्जनतोषिणीका प्रकाशन किया और भारतमें सर्वत्र भ्रमणकर शुद्धभक्तिका प्रचार किया। इनका आविर्भाव बङ्गालके नदिया जिलाके अन्तर्गत उला नामक ग्राममें २ सितम्बर, १८३८ ई॰ को हुआ था। समग्र विश्वमें गौड़ीय मठ-मिशनके प्रतिष्ठाता एवं प्रचारक आचार्यसिंह श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' इन्हीं महापुरुषके पुत्ररत्न हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने श्रीजगन्नाथ बाबाजी महाराजके निर्देशानुसार श्रीगौर-जन्मभूमिका प्रकाश किया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थोंमें जैवधर्म, चैतन्यशिक्षामृत, श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य, आम्नायसूत्र, प्रेमप्रदीप, बौद्ध-विजयकाव्यम्, श्रीकृष्णसंहिता, कल्याण-कल्पतरु, शरणागति, गीतावली, तत्त्वसूत्र, श्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्, श्रीहरिनाम-चिन्तामणि, नवद्वीपभावतरङ्ग, चैतन्यचरितामृतका अमृतप्रवाह भाष्य, गीताका भाष्य, ईशोपनिषद्का भाष्य, तत्त्वमुक्तावली, श्रीभागवतार्कमरीचिमाला, विजनग्राम काव्य, नाम भजन, Life and Precepts of Mahaprabhu आदि प्रसिद्ध हैं।

श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज—श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज अतिशय वैराग्यवान् एवं भजन परायण सिद्ध महात्मा थे। पहले व्रजमण्डलमें तत्पश्चात् गौड़मण्डलमें भजन करते थे एवं उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्त्तन करते थे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके अतिशय प्रियजन थे। इनके ही शिष्य श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर हैं, जिन्होंने भारतमें गौड़ीय-वैष्णव धर्मका प्रचार किया तथा निज अनुगतजनों द्वारा विदेशोंमें भी करवाया।

श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'श्रील प्रभुपाद'—विश्वभरमें गौड़ीय मठ-मिशनके प्रतिष्ठाता, पूर्वी एवं पश्चिमी देशोंकी अनेकों भाषाओंके ज्ञाता, प्रकाण्ड दार्शनिक, ज्योतिषी, अद्वितीय सुवक्ता, अनुसन्धानप्रिय एवं अत्यन्त प्रतिभाशाली गौड़ीय वैष्णवाचार्य थे। श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'श्रील प्रभुपाद' ८ फरवरी १८७४ ई॰ शुक्रवार माघी कृष्णा पञ्चमीको श्रीजगन्नाथपुरीमें आविर्भूत हुए थे। इनके पिता श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और माता श्रीभगवतीदेवी हैं। बचपनसे ही इनमें भगवद्भक्तके लक्षण लक्षित होते थे। छोटी आयुमें ही इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी एवं बङ्गलाके प्रतिष्ठित विद्वान बनकर श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके निकट समस्त वैष्णव-ग्रन्थोंका अध्ययन किया और उनकी आज्ञासे शुद्धभक्ति प्रचारके कार्यमें नियुक्त हुए। इन्होंने श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजसे दीक्षा ग्रहण की थी तथा बाबाजी महाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् इन्होंने त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया था। इन्होंने गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीमन्महाप्रभुके पश्चात् त्रिदण्ड संन्यासकी धाराका प्रवर्तन किया तथा दैव-वर्णाश्रम धर्मकी स्थापना की। देश-विदेशोंमें योग्य त्रिदण्डी संन्यासियोंको भेजकर श्रीमन्महाप्रभुके सिद्धान्तोंका प्रचार किया, विश्व-वैष्णव-राजसभाका पुनः गठन किया, गोस्वामियोंके लुप्तप्राय ग्रन्थोंका पुनः प्रकाशन किया, श्रीनवद्वीपधाम, श्रीव्रजमण्डल, श्रीगौड़मण्डल, श्रीक्षेत्रमण्डलकी परिक्रमाका पुनः प्रचलन किया; श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भाव-स्थल श्रीमायापुर योगपीठमें विशाल मन्दिर, श्रीचैतन्य मठ, भक्तिविनोद इंस्टीट्यूट [Institute], संस्कृत पाठशाला, कलकत्तामें विशाल श्रीगौड़ीय मठ तथा भारतके प्रायः सभी बड़े तीर्थ स्थानों एवं बड़े नगरोंमें गौड़ीय

मठोंकी स्थापना की, हिन्दीमें—भागवत, बङ्गलामें—दैनिक नदीया प्रकाश, साप्ताहिक एवं मासिक गौड़ीय, तथा अंग्रेजीमें हारमोनिस्ट [Harmonist] एवं अन्यान्य भाषाओंमें भी मासिक पत्रिकाओंके प्रकाशन द्वारा सर्वत्र ही शुद्धभक्तिका प्रचार किया। इतना ही नहीं, इन्होंने अनेक ग्रन्थों, भाष्यों, टीकाओंकी रचनाकर तथा शिष्योंको प्रेरितकर उनसे भी अनेक ग्रन्थोंका सृजन करवाकर गौड़ीय-वैष्णव साहित्य भण्डारको अतीव समृद्ध किया है। इस प्रकार इन्होंने अपनी अलौकिक विद्वता, अकाट्य शास्त्रयुक्ति, प्रखर प्रतिभा एवं शास्त्र-प्रमाणोंके बलपर भक्ति विरुद्ध कर्मी, ज्ञानी, मायावादी एवं अन्यान्य कुमतोंके कुसिद्धान्तोंका खण्डनकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेमधर्मका अति अल्पकालमें ही सर्वत्र प्रचार कर दिया। श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'श्रील प्रभुपाद'ने श्रीचैतन्यचरितामृतके अनुभाष्य, श्रीचैतन्य भागवतके गौड़ीय-भाष्य, भागवतकी विवृत्ति, भक्तिसन्दर्भके गौड़ीय-भाष्यकी रचना की तथा वेदान्त तत्त्वसार, प्रमेय-रत्नावली, श्रीचैतन्य भागवतके अंग्रेजी अनुवाद, ब्रह्मसंहिताके अंग्रेजी अनुवाद आदि प्रकाशित किये। इनके अतिरिक्त इन्होंने नवद्वीप पञ्जिकाका प्रवर्त्तन किया। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके जैवधर्म, चैतन्यशिक्षामृत आदि अनेक ग्रन्थोंको भी पुनः प्रकाशित किया।

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज—जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' के अन्तरङ्ग प्रिय पार्षद एवं वर्तमान अधस्तनवर परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञानकेशव गोस्वामी महाराज श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके संरक्षक, श्रीमन्महाप्रभुकी परम्परामें दशम आचार्य हैं। ये श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलमठ (श्रीनवद्वीप धाममें) श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ तथा भारतव्यापी अन्यान्य शाखा मठोंके संस्थापक एवं नियामक आचार्य हैं। ये प्रकाण्ड (गम्भीर) दार्शनिक पण्डित, वेदान्तके अद्वितीय पारङ्गत विद्वान, प्रखर सुवक्ता, दूरदर्शी, सम्प्रदाय रहस्यविद् तथा प्रतिभाशाली आचार्यकेशरी हैं। श्रील 'प्रभुपाद' की अप्रकट लीलाके पश्चात् श्रीसारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव धारामें जो शिथिलता आ गयी थी, उसमें इन महापुरुषने ही नवजीवनका सञ्चार किया है। इन्होंने भारतके अनेक स्थानोंमें नये-नये मठों और शुद्धभक्ति प्रचार-केन्द्रोंकी स्थापनाकर अनेक भाषाओंमें मासिक पत्रिकाओंका प्रकाशनकर पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका पुनः मुद्रण कराकर, योग्य-योग्य त्रिदण्डि संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंको भक्तिप्रचारके लिये नाना स्थानोंपर भेजकर, गौड़-व्रज-क्षेत्रमण्डलकी परिक्रमाका पुनः प्रचलनकर, संस्कृत विद्यालय आदिकी स्थापनाकर, स्वयं अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर क्रमशः सम्प्रदायका गौरव बढ़ाते हुए सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया है। इनकी रचनाओंमें—मायावादकी जीवनी, अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्व, श्रीबलदेव विद्याभूषणके गीता भाष्यका बङ्गला अनुवाद आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने श्रीश्रीराधाविनोदविहारी तत्त्वाष्टकम्, श्रीतुलसी-वन्दना, श्रीप्रभुपादकी आरती, श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीकी मङ्गलारति आदि अनेक स्तव-स्तोत्रोंकी रचना की है।

हम आज अपने इन श्रीगुरुदेव—श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी ६७वीं वार्षिकी आविर्भाव तिथिके अवसरपर इनके अभय चरणकमलोंमें अपनी आन्तरिक श्रद्धारूपी पुष्पाञ्जलि अर्पणकर इनके माध्यमसे समस्त पूर्वाचार्योंके चरणोंमें भी हार्दिक श्रद्धा अर्पण करते हैं। कारण, शास्त्रोंके अनुसार श्रीवेदव्यासके आसनकी सेवा करते हुए, उनके आनुगत्यमें श्रीभागवत-धर्मके आचार और प्रचारको करनेवाले उनकी परम्परामें स्थित वर्तमान आचार्यकी पूजा ही सम्पूर्ण गुरु-परम्पराकी पूजा है। इसीको ही दूसरे शब्दोंमें श्रीव्यास-पूजा या श्रीगुरु-पूजा कहते हैं। हम पुनः अपने श्रीगुरुदेवके श्रीचरणकमलोंमें असंख्य दण्डवत् प्रणाम निवेदन करते हैं।

[श्रीभागवत-पत्रिका, वर्ष-९ (१९६३-६४), संख्या-१२ से संग्रहीत अंश]

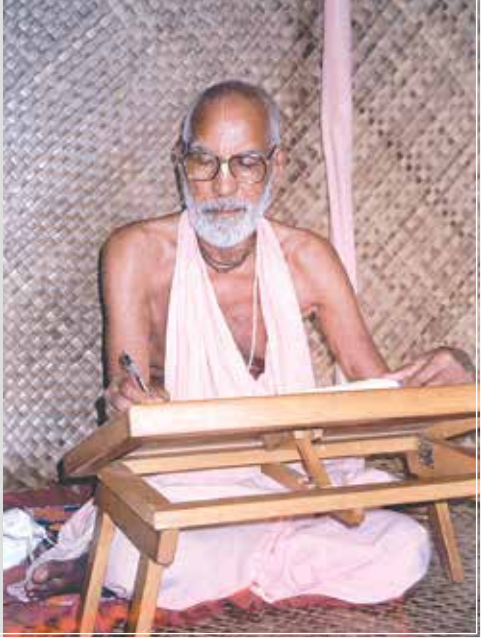

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके पत्रामृत

(पत्र—८)

श्रीगौरसुन्दर तुमको भजन-सम्बन्धी सारी सुविधाएँ प्रदान करेंगे

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो॰—मथुरा (उ.प्र.)
दिनांक ६/८/१९८१

माँ उमा!

मेरा स्नेहाशीर्वाद ग्रहण करना। तुम्हारा पत्र मिला। संवाद पाकर आनन्दित हुआ। पूज्यपाद वामन महाराजकी आँखका आपरेशन हो गया है—अवगत हुआ। उनका भी एक पत्र मुझे मिला है।

तुम्हारा दैन्य-आर्त्तिमूलक भाव पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। साधक जीवमें ऐसी दीनता होनी चाहिए। श्रीगौरसुन्दर तुमको भजन-सम्बन्धी सारी सुविधाएँ प्रदान करेंगे—तुम चिन्ता नहीं करना। भगवान् एवं गुरुदेव सर्व-अन्तर्यामी और सर्व-समर्थ हैं। वे साधकोंकी निष्कपट अभिलाषाओंकी पूर्त्ति करते हैं।

आजकल यहाँ सायं ४ से ५ बजे तक मनःशिक्षा और रातमें बृहदभागवतामृतके अन्तिम भागका पाठ हो रहा है। जन्माष्टमीके बाद मेरा नवद्वीप जाना होगा या यहाँ रहना होगा, इसका अभी ठीक निश्चय नहीं हुआ है। शायद नवद्वीप जाऊँ। अतः तुम जल्दीमें यहाँ मत आना, क्योंकि यदि मैं बङ्गाल चला गया तो यहाँपर तुमसे भेंट नहीं होगी।

शुभानन्द संस्कृत विद्यालयमें श्रीमद् भागवत एवं व्याकरण आदि पढ़ रहा है। सभी मठवासी कुशलसे हैं। मैं भी एक प्रकार हूँ। बीच-बीचमें पत्र देना। बीचमें शरीर-अस्वस्थता और आलस्यके कारण पत्र नहीं दे सका। मेरा शुभाशीष ग्रहण करना। माँको भी देना।

इति।

तुम्हारा नित्य मङ्गलाकाङ्क्षी
Swami B.V. Narayana
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

(पत्र—९)

मैं तुम्हारे वंशका ऋणी बन गया हूँ

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो॰—मथुरा (उ.प्र.)
दिनांक ९/१२/१९८५

माँ उमा!

मेरा स्नेहाशीर्वाद ग्रहण करना। माँ और दीदीको मेरा दण्डवत कहना। तुमको एक पत्र दिया था, आशा है वह पत्र मिला होगा।

पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजका पत्र मिला है। उन्होंने दैन्यपूर्वक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके ब्रह्मचारियोंकी सेवावृत्तिकी बड़ी प्रशंसा की है। हमारी भी बड़ी प्रशंसा की है। यह उनकी उदार वैष्णवताका गुण है—अपना गुण दिखायी नहीं देता, दूसरोंका अल्पगुण भी बृहद् रूपमें दिखायी पड़ता है।

तुम गार्गी दीदीके परलोकगत पतिका नाम तथा उनके पुत्रोंका नाम पत्रमें लिखकर भेजना। उनका नाम मन्दिरके परिक्रमा-मार्गमें पत्थर पर लिखवा दूँगा। उन्होंने तथा तुम लोगोंने बहुत सेवाकी है। मैं तुम्हारे वंशका ऋणी बन गया हूँ।

यहाँका समाचार कुशल है। ७ ब्रह्मचारी नवद्वीप प्रचारके लिए गये हैं। **** जगदीश ब्रह्मचारी और शुभानन्द भी बङ्गालमें प्रचारके लिए जायेंगे, अतः हमलोग केवल १६-१७ मठवासी यहाँ रह जायेंगे।

अब शामको पाठमें पुनः प्रचुर श्रोता आने लगे हैं। सब ठीक चल रहा है। तुम नियमित रूपसे भजन-साधन कर रही होगी। मेरा पुनः शुभाशीष ग्रहण करना। इति।

तुम्हारा नित्य मङ्गलाकाङ्क्षी
Swami B.V. Narayana
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

सम्पादकीय निवेदन: श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सहृद पाठकोंसे विनम्र निवेदन है कि यदि आपमें-से किसीके पास श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके द्वारा हिन्दी अथवा बङ्गला भाषामें लिखित पत्र हैं, तो कृपया उस पत्र//पत्रों को scan करवाकर अथवा उनकी स्पष्ट photo लेकर bhagavata.patrika@gmail.com पर e-mail करें या ७८९५९३९३१६ no. पर whatsapp करें। हम श्रील गुरुदेवके द्वारा आपको भेजे गए पत्रोंको श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित करेंगे।

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पञ्चम वार्षिक विरह-तिथिपर भक्ति-प्रसूनाञ्जलि

[श्रीयुक्ता उमा दीदीकी माताजी एवं परमगुरुदेवकी चरणाश्रिता श्रीमती सरयूबाला दासी द्वारा वर्ष १९७४ ई॰ में लिखित]

जय जय गुरुदेव श्रीभक्तिप्रज्ञान।
तव पदयुगे मम असंख्य प्रणाम॥

तुमि त' करुणामय पतितपावन।
मो सम पापीरे तारिते, तव आगमन॥

दुराचार बलि मोरे ना करि उपेक्षा।
संसार-सागर हइते करिबारे रक्षा॥

आमि नित्य कृष्णदास—इहा गिया भुलि।
मायादास हइया भवे चिरदिन घुरि॥

कृपा करि घुचाओ हृदयेर अन्धकार।
अलीक मोहेर बन्धन घुचाओ आमार॥

आजि तब एइ अप्रकट-तिथि-वासरे।
कत शत भक्त पूजिछेन भक्ति-उपचारे॥

आशा जागे हृदय माझे करि तब वन्दन।
किन्तु, कलुष भरा चित्ते नाहि भक्ति-साधन॥

तोमा बिना शून्यमय देखि ए' भुवन।
विरहानले सदा दग्ध हइतेछे जीवन॥

भक्तजन भक्तिनेत्रे तोमाय करे दरशन।
अभक्त चक्षुहीनेर कभु नहे त दर्शन।

वार्द्धकेर आगमने आयुरवि हइतेछे क्षीण।
ताहातेइ आमि तो शुद्धा-भक्ति-रति-हीन॥

हे प्रभो! एइ आशीष कर ए' दीना पामरे।
लभि येन सेवाधिकार जन्म जन्मान्तरे॥

हे गुरुदेव श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज! आपकी जय हो, जय हो! आपके चरणयुगलमें मेरे असंख्य प्रणाम स्वीकार हों। आप करुणामय एवं पतितपावन हैं, तथा मेरे जैसे पापीको तारनेके लिए ही आपका इस जगत्‌में आगमन हुआ है। मुझे दुराचारी जानकर मेरी उपेक्षा न करें, संसार सागरसे मेरी रक्षा करें। 'मैं नित्य कृष्णदास हूँ'—इसे भूलकर मैं मायादास होकर संसारचक्रमें चिरकालसे घूम रही हूँ। आप कृपापूर्वक मेरे हृदयके अन्धकारको दूरकर मेरे मिथ्या मोहके बन्धनको हटाएँ। आज आपकी अप्रकट तिथिके अवसरपर सैकड़ों भक्त विविध भक्ति-उपचारोंसे आपकी पूजा कर रहे हैं। मेरे हृदयमें भी आशा जागी है कि मैं आपकी वन्दना करूँ, किन्तु मेरे मलिनतासे भरे चित्तसे एवं भक्ति-साधनसे रहित होनेके कारण यह कैसे सम्भव होगा? आपके बिना यह जगत् मुझे सर्वत्र शून्य दीख रहा है, विरहकी अग्निसे मेरा जीवन सदा दग्ध हो रहा

है। भक्तजन भक्तिनेत्रसे आपका दर्शन करते हैं, परन्तु अभक्त चक्षुहीन कदापि आपका दर्शन नहीं कर सकता। अभी मरी वृद्धावस्था आ गयी है, आयुरूपी सूर्य डूबते जा रहे हैं, अतएव मैं शुद्धभक्ति-रतिसे रहित हूँ। हे प्रभो! इस दीनहीन पामरके प्रति कृपा-आशीर्वाद करें, जिससे कि मैं जन्म-जन्मान्तरों तक आपकी सेवाका अधिकार प्राप्त कर सकूँ।

श्रीचरण-सेवाभिलाषिणी
(श्रीमती) 'सरयूबाला दासी' (साधु)

[श्रीगौड़ीय-पत्रिका वर्ष-२५, संख्या-१० से अनुदित]

आर्त्ति निवेदन

[श्रीयुक्ता उमा दासी द्वारा अपने गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका अनेक दिनों तक दर्शन न पानेके कारण अपना दुःख निवेदन (वर्ष १९७१ ई॰ में लिखित)—]

परमाराध्य देव!

कत दीर्घ दिन धरि, तव चरण दर्शन लागि,
मने मने करेछिनु आशा।
सब आशा ना पूरिल, मनोरथ विफल हइल,
आशाभङ्गे दुःखित ए अधमा॥
बुझियाछि भाल मते, बिना भाग्ये नाहि मिले,
श्रीगुरुर चरण दर्शन।
मम मन्दभाग्य लागि, सङ्गोपने सदा काँदि,
धिक् धिक् मोर ए' जीवन॥
आमि त' अधम अति, ताये अति मन्दमति,
कृपा ना हइल मम प्रति।
प्रभु! तुमि त' करुणासिन्धु, अधम जनार बन्धु,
उपेक्षिले कि ह'बे मोर गति??
यदिओ अपराधी आमि, तुमि' त एकमात्र गति,
दया करो, ना करह वञ्चन।
तुमि वाञ्छाकल्पतरु, मोर इच्छा पूर्ण करु,
दिया तब अभय चरण॥

हे परमाराध्य देव! कितने ही दिनोंसे आपके श्रीचरणोंका दर्शन पानेके लिए मनमें आशा लेकर बैठी हूँ। परन्तु, मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई और मनोरथ विफल हो गया, इस आशाके भङ्ग हो जानेसे यह अधमा अत्यन्त दुःखी है। मैं भलीभाँति समझ गयी हूँ कि श्रीगुरुका चरण-दर्शन बिना भाग्यके नहीं मिलता है। अपने मन्दभाग्यके लिए मैं एकान्तमें सदैव रोती रहती हूँ कि मेरे इस जीवनको धिक्कार है! धिक्कार है! मैं तो अति अधम हूँ, इसलिए मुझ अति मन्दमतिके प्रति आपकी कृपा नहीं हुई है। हे प्रभु! आप तो करुणाके सागर हैं और अधम जनोंके बन्धु हैं, आप यदि मेरी उपेक्षा कर देंगे तो मेरी क्या गति होगी? यद्यपि मैं अपराधी हूँ, फिर भी आप ही मेरी एकमात्र गति हैं, दयापूर्वक मेरी वञ्चना न करें। आप वाञ्छाकल्पतरु हैं, इसलिए अपने अभय-चरणोंका दर्शन प्रदानकर मेरी इच्छा भी पूर्ण करें।

—श्रीयुक्ता उमारानी, चुँचुड़ा (हुगली)

[श्रीगौड़ीय-पत्रिका वर्ष-२२, संख्या-१२ से अनुदित]

भक्तिमाधुरी श्रीयुक्ता उमा दीदी की स्मृतिमें–

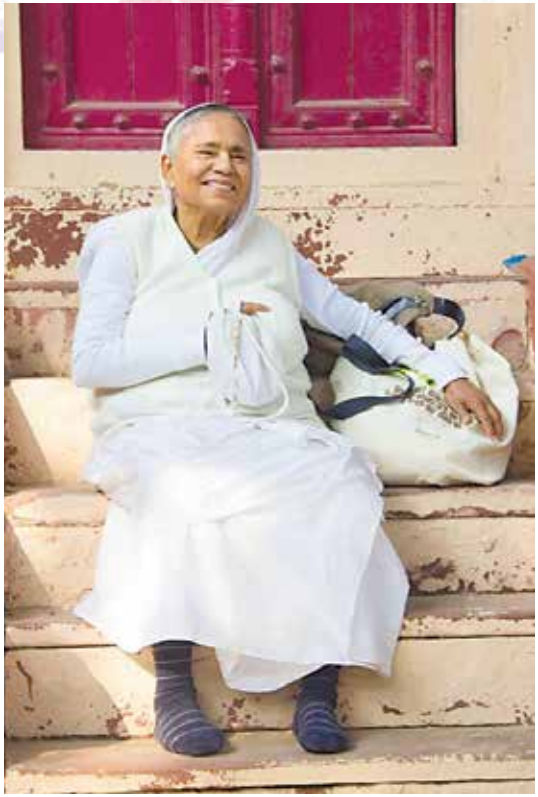

अत्यन्त दुःखके साथ अवगत कराया जा रहा है कि विगत १४ फरवरी २०२३, मङ्गलवार, फाल्गुन मास, कृष्णपक्ष, नवमी तिथिको प्रातः ६:२७ बजे हमारी सुपरिचिता, निरन्तर श्रीहरि-गुरु- वैष्णवोंकी निष्कपट सेवा-परायणा, अत्यन्त सरल-स्निग्ध-एकनिष्ठ, हमारे परम-गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी स्नेह-कृपादृष्टि-धन्या एवं हमारे श्रीगुरुदेव-त्रय श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी चरणाश्रिता, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी स्नेह-उपदेश-धन्या, भक्तिमाधुरी श्रीयुक्ता उमा दीदीने ९० वर्षकी आयुमें श्रीवृन्दावन धाममें, श्रीयमुनाजीके तटपर एवं श्रीमन्महाप्रभुकी बैठक इमलीतला लीलास्थलीके सन्निकट श्रीगोपीनाथ भवनमें अपने गुणमुग्ध भक्तोंको अन्तर्वेदनामें निमग्नकर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गकी विवर्धनशील सेवाओंमें अधिकार प्राप्त किया है।

उनके देहत्यागका समाचार प्राप्त होते ही वृन्दावन, मथुरा, दिल्ली, फरीदाबाद आदि स्थानोंसे उनके गुणमुग्ध संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ पुरुष-महिला वैष्णवजन एवं सज्जनवृन्दने श्रीगोपीनाथ भवनमें उपस्थित होकर अन्तिम दर्शन करके उनके चरणोंमें श्रद्धा पुष्पाञ्जलि अर्पित की। उसी दिन ११:३० बजे यथारीति श्रीहरिनाम संकीर्तनके मध्य श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके नवद्वीप स्थित मूल समाधि मन्दिरोंसे विशेष यत्नपूर्वक लायी गयी गुरुवर्गकी प्रसादी मालाएँ तथा श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीकी प्रसादी माला अर्पणकर उनकी आरती कर उन्हें पुष्प-सुसज्जित शयन-पालकीमें विराजमान कराया गया। तत्पश्चात् प्रायः २५० भक्तजन हरि-सङ्कीर्त्तन करते हुए उस शयनपालकीको श्रीधाम वृन्दावनके विभिन्न गौड़ीय देवालयोंके सामनेसे परिक्रमा कराते हुए केशीघाटके सन्निकट श्रीयमुना-तटपर उपस्थित हुए जहाँ गौड़ीय-वैष्णव विधिके अनुसार उनका व्रजरज-प्राप्ति संस्कार सम्पन्न हुआ।

जन्म एवं प्रारम्भिक जीवन

भक्तिमाधुरी श्रीयुक्ता उमा दीदीने अपने पारमार्थिक जीवनसे हमारे लिए एकान्तिक भक्ति और वैराग्यका आदर्श दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। दीदीके जीवनको अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता (६/४१) *'शुचीनां श्रीमतां गेहे'* के अनुसार अपने पूर्व जन्मसे पारमार्थिक यात्रा-क्रमके फलस्वरूप उनका जन्म २६ जनवरी, १९३३ ईस्वी को (तदानुसार माघमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथि अर्थात् मौनी अमावस्याके अगले दिन) श्रीमन्महाप्रभुकी पदाङ्कित भूमि भारतवर्षके पश्चिम बङ्गालके चुँचुड़ा शहरमें एक सात्त्विक एवं अत्यन्त धनी परिवारमें हुआ था। मौनी अमावस्या तिथिके अगले दिन अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको जन्म ग्रहणकर उन्होंने परोक्षरूपमें (indirectly) यह पूर्व सूचित कर दिया था कि उनका सम्पूर्ण जीवन उनके अभिन्न गुरुपादपद्म श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमय होगा और ऐसा हुआ भी। उनका आनुष्ठानिक नाम था तृप्ति, और परिवारिक पुकारनेका नाम था उमा। छह भाई और दो बहनोंमें उमा दीदी सबसे छोटी थीं। उनकी माता श्रीमती सरयूबाला दासी उच्च कोटिकी वैष्णवी थीं जो हमारे परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे दीक्षित थीं। उमा दीदीके पिताजी रायसाहब मुनीन्द्रनाथ साधु शाक्त (शक्तिके उपासक) थे।

'रायसाहब' अंग्रेज शासित भारतमें प्रजाको दिया जानेवाला तीसरा सर्वोच्च सम्मान था। जो नागरिक राज्यके प्रति विश्वस्त सेवा करते थे या जनमङ्गल कार्य करते थे, उनको यह उपाधि प्रदान की जाती थी। यह उपाधि जून १९२४ ई॰ में उमा दीदीके पिताजी श्रीमुनीन्द्रनाथ साधुको ब्रिटिश शासित भारतके तत्कालीन राजप्रतिनिधि (Viceroy) और गवर्नर जनरलने उनकी विशेष सामाजिक सेवाओंके लिए दी थी। यद्यपि उमा दीदीके पिताजी स्वयं शाक्त थे, फिर भी सन् १९४२ ई॰ में चुँचुड़ामें प्रथम गौड़ीय मठ

'श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ' की स्थापनामें उनकी बड़ी भूमिका थी, जो उनकी धर्मपत्नी अर्थात् उमा दीदीकी माताजीके प्रति उनके स्नेहका प्रतीक था। उमा दीदीकी बड़ी बहन गार्गी दीदी (सुशीला बाला) भी एक समर्पित वैष्णवी थीं और वे भी श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी चरणाश्रित शिष्या थीं।

सन् १९४६ ई॰ में तेरह वर्षकी अल्पायुमें उमा दीदीका विवाह एक सात्त्विक परिवारमें हुआ। उनके ससुर श्रीकिशोरीमोहन दे रामकृष्ण परमहंसके सोलह प्रत्यक्ष शिष्योंमें-से एकके अनुयायी थे। अपने भाइयोंके साथ झगड़ा होनेपर श्रीकिशारीमोहन दे अपने गुरुदेवके उपदेशके अनुसार अपने परिवारके साथ कृष्णनगर छोड़कर प्रयागराज चले गये। वहाँ उन्होंने एक नया जीवन तथा नया व्यापार आरम्भ किया। Lucky Sweet Mart के नामसे एक मिठाईकी दुकान खोली जो अपने नामके अनुरूप प्रयागराजमें बड़ी प्रसिद्ध और सफल हुई। नेहरु परिवार भी उनसे मिठाई लेता था। उमा दीदी विवाहके दो सालके अन्दर अर्थात् उनकी पन्द्रह सालकी आयुमें ही अति दुःखद रूपसे अपनी छह महीनेकी बेटी तथा अपने पतिको खो बैठीं। दोनों ही चेचक बीमारीसे चल बसे। इससे प्रतीत होता कि विधाताने उनके लिए सांसारिक जीवनका विधान नहीं किया था, अतएव सांसारिक जीवनकी अनित्यता अति अल्पायुमें ही अनुभव करा दी।

तब उमा दीदीके पिताजी श्रीमुनीन्द्रनाथ साधु उनके ससुरजीकी अनुमतिसे दीदीको वापस चुँचुड़ा ले आये जिससे कि वे चुँचुड़ाके प्रथम बालिका विद्यालय 'बालिका वाणी मन्दिर' में अपनी पढ़ाई पूरी कर सके। सन् १९२७ ई॰ में प्रतिष्ठित वह विद्यालय उनके पिताजी द्वारा किये गये कई समाज सेवा कार्योंमें-से एक था। उसके बाद उमा दीदीने हूगली मोहसिन कालेज (सह-शिक्षा) में प्रवेश लिया, जो उनके पैतृक घरके पास था।

वे अपने ससुरालमें ज्येष्ठ पुत्रवधू थीं, अतः कुछ कालके उपरान्त वे पुनः अपने ससुरके बुलानेपर प्रयागराजमें चली गयीं। उनके ससुरालमें रामकृष्ण मिशनके संन्यासियोंका नियमित आना-जाना था। उनके सङ्गके प्रभावसे दीदीको अनुभव हुआ कि जीवनका एक उद्देश्य है, तथा कामिनी और कञ्चन (काम-भावना और अर्थ) केवल सांसारिक दुःख-कष्ट एवं अवास्तव मोह-मायाको बढ़ाते हैं। इस अनुभवके साथ वे फिर चुँचुड़ा लौट आयीं।

परम गुरुदेवके दर्शन

परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने वर्ष १९४१ ई॰ में चुँचुड़ा स्थित श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरके मालिकके आवेदनपर प्रचार पार्टीको लेकर वहाँके विभिन्न गणमान्य व्यक्तियोंके घरोंमें हरिकथा-कीर्तनके माध्यमसे विपुलरूपसे प्रचार किया, जिसमें उन्होंने श्रीमुनीन्द्रनाथ साधुके घरमें तीन दिनों तक श्रीमद्भगवद्गीताका पाठ-व्याख्या की। इसके फलस्वरूप चुँचुड़ाके बहुतसे प्रतिष्ठित लोग परम गुरुदेवसे प्रभावित हुए जिनमें उमा दीदीके पिताजी श्रीमुनीन्द्रनाथ साधु और उनके पारिवारिक जन भी थे। परम गुरुदेवके आचार और प्रचारसे प्रभावित होकर श्रीमुनीन्द्रनाथ साधु, उनके भ्राताओं एवं वहाँके और भी कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने परम गुरुदेवको सूचित किया कि चुँचुड़ामें विराजित श्रीवास पण्डितजी द्वारा पूजित एवं परवर्त्तीकालमें श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर द्वारा संरक्षित 'श्रीवास महाप्रभुर बाड़ी' नामक देवालयमें विराजमान श्रीगौर-निताईके श्रीविग्रहोंकी सेवा-पूजा ठीकसे नहीं

चुँचुड़ामें रहते समय उमा दीदी बीच-बीचमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें जाने लगीं। उमा दीदीने परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके दर्शन कई बार किये। यद्यपि परम गुरुदेव उन्हें बहुत स्नेह करते थे और उन्हें हरिनाम करनेके लिए कहते, किन्तु तब उमा दीदीकी वैष्णवोंमें अधिक श्रद्धा नहीं थी। उस समय दीदी कुछ आधुनिक विचारधारा रखती थीं। उन्हें कुछ सजने-सँवरनेका शौंक था तथा पढ़ाई, लिखाई, खेलना, संगीत आदिमें भी रुचि थी।

हो रही है। उन्होंने परम गुरुदेवसे निवेदन किया कि वे गौड़ीय-वैष्णव पद्धतिके अनुसार शुद्धभावसे उन श्रीविग्रहोंकी सेवाका दायित्व ग्रहण करें। परम गुरुदेवने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अप्रैल १९४३ ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके बहुतसे ब्रह्मचारी-संन्यासियोंके साथ चुँचुड़ा शहरमें नगर-सङ्कीर्तन और शोभा यात्राके माध्यमसे उन्होंने उक्त देवालयमें प्रवेश करके वहाँ विराजित श्रीविग्रहोंकी सेवापूजा आदि परिचालनाका सम्पूर्ण दायित्व ग्रहण किया। तबसे वह देवालय 'श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ' के नामसे प्रचारित हुआ और वहाँ श्रीवास पण्डितके श्रीगौर-निताईके श्रीविग्रहोंकी सेवा-पूजा, पाठ-कीर्तन-आरति सुष्ठुरूपसे होने लगी। चुँचुड़ाके बहुतसे प्रतिष्ठित लोगोंके अनुरोधपर परम गुरुदेवने उसी १९४३ ई॰ के कार्तिक मासमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रहकर एक मास व्यापी उर्जाव्रत, श्रीदामोदरव्रतका पालन किया। इसी क्रममें उमा दीदीके परिवारका परम गुरुदेवसे सम्बन्ध हुआ और वे लोग श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें नियमित रूपसे आने लगे। उमा दीदीकी माताजीने और बड़ी दीदी गार्गीने परम गुरुदेवका चरणाश्रय किया और चुँचुड़ामें अनेक लोग परम गुरुदेवके शिष्य बने।

श्रील त्रिविक्रम महाराजजीके सङ्गका प्रभाव एवं श्रीगुरुपदाश्रय

पारिवारिक संस्कारके कारण उमा दीदी धार्मिक थीं। सबसे छोटी होनेके कारण घरमें सभी उनसे स्नेह करते

थे। अब वे मुख्य रूपसे चुँचुड़ामें ही रहने लगी थीं। गार्गी दीदी भी चुँचुड़ा मठके पास रहती थीं। उमा दीदीकी माताजी और गार्गी दीदी प्रतिदिन कथा सुनने मठमें जाती थीं। परिवारमें केवल गार्गी दीदी और माँ वैष्णवी थे। माताजी घरमें गोपालकी सेवा करती थीं। माताजी दिनके समय उमा दीदीको भी मठमें फल, सब्जी आदि देनेके बहानेसे मठ भेजती थीं कि वहाँ जाकर दीदी थोड़ा साधुसङ्ग करे। वे सोचती थीं कि विधवा है, सत्सङ्गसे कल्याण होगा। श्रील त्रिविक्रम महाराजजी उमा दीदीको विशेष स्नेहपूर्वक समय देकर कथा सुनाते। कभी-कभी ऐसा लगता था कि श्रील त्रिविक्रम महाराजजी अपना समय नष्ट कर रहे हैं मानों दीदी पर कुछ असर नहीं पड़ेगा। कारण—दीदी श्रील त्रिविक्रम महाराजसे कथा तो सुनती थीं, किन्तु तिलक लगाना आदि कुछ पालन नहीं करती थीं। एक दिन गार्गी दीदीने उमा दीदीको तिलक लगा दिया। उस दिन श्रील त्रिविक्रम महाराजजीने उमा दीदीकी बहुत प्रशंसा की। उस दिनके बाद वे प्रतिदिन तिलक लगाने लगीं। अब श्रील त्रिविक्रम महाराजकी कथाके प्रभावसे धीरे-धीरे दीदीका भाव बदलने लगा। धर्मका ज्ञान और शुद्धभक्तिके सिद्धान्त समझ आने लगे। उमा दीदीका जो थोड़ा झुकाव रामकृष्ण मिशनके विचारोंके प्रति था कि जीवसेवा ही ईश्वरसेवा है—उसको श्रील त्रिविक्रम महाराजने अपनी कथाओं और युक्तियोंसे निरस्त कर दिया। एक दिन श्रील त्रिविक्रम महाराजजी बोले कि अनन्त जन्मोंसे हम अपनी इन्द्रियोंको विषय भोगोंमें लिप्त रखे हुए हैं, किन्तु हमें तृप्ति नहीं मिली, शान्ति नहीं मिली। किन्तु मनुष्य जन्म दुर्लभ है, अतः यह जीवन यदि श्रीमन्महाप्रभुको समर्पित करें, इस जन्ममें आत्मेन्द्रिय तर्पणको छोड़कर पूर्णरूपसे कृष्णसेवामें इन्द्रियोंको लगाएँ तो हमें सिद्धि मिल सकती है। श्रील त्रिविक्रम महाराजकी कथाएँ सुनते-सुनते धीरे-धीरे उमा दीदीको वैष्णवोंकी महिमा समझ आने लगी और उनमें समर्पणका भाव जाग्रत हुआ। अन्ततः यह कथाएँ उनको श्रीगुरुके चरणोंमें ले आयीं।

तब सन् १९६८ ई॰ में अपने अप्रकटसे पूर्व एक समय परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज चुँचुड़ामें आये थे, उस समय उमा दीदीने उनको दस रूपयेका नोट देते हुए कहा कि यह आगामी श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमाकी सेवाके लिए है। परम गुरुदेवने दीदीसे पूछा इतना पैसा कहाँसे लायी? उस समयके दस रूपयेका मूल्याङ्कन आजके एक हजार रूपयेसे भी अधिक है। उमा दीदीने कहा कि मैंने जोड़े हैं। तब उमा दीदीके गलेमें कण्ठी न देखकर परम गुरुदेवने उन्हें स्नेहवशतः कण्ठी पहननेको दी और कहा कि मैं तुमको गौरपूर्णिमाके समय हरिनाम दूँगा। किन्तु उसी वर्ष कार्तिकमासके प्रथम दिन परम गुरुदेवने अप्रकट लीला अविष्कार की। उमा दीदी इस बातका बहुत दुःख जताया करती थीं। इस प्रकारसे दीर्घ ३७ वर्षोंकी संघर्षपूर्ण जीवन यात्राके बाद अन्तमें उनको सद्गुरुका चरणाश्रय प्राप्त हुआ। सन् १९७० ई॰ में श्रीरामनवमी तिथिपर उन्होंने श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके ही अभिन्न स्वरूप एवं अधिकृत प्रतिनिधि श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजसे विधिवत् हरिनाम-दीक्षा प्राप्त की।

उमा दीदीकी हरिनाम-दीक्षा होनेपर उनकी माँ, उनकी दीदी और पिता सब बहुत प्रसन्न हुए। श्रील त्रिविक्रम महाराज उमा दीदीको बहुत स्नेह करते थे। यद्यपि उन दिनोंमें मठोंमें स्त्रियोंको सेवाका अधिकार नहीं था, किन्तु दीक्षाके उपरान्त श्रील त्रिविक्रम महाराजने उमा दीदीको मठमें ठाकुरजी की सब्जी अमानिया, मसाले पीसना आदि रसोई सेवामें अधिकार दिया। परम गुरुदेवके समयमें स्त्रियाँ बिल्कुल रसोईमें नहीं जा सकती थीं। प्रचारमें भी सारे कार्य ब्रह्मचारी ही करते थे। किन्तु उमा दीदीके लिए नियम बदल गये। सहज ही उनको रसोईमें सेवा मिलती। श्रील त्रिविक्रम महाराज प्रत्येक सेवामें कुशल थे, वे उमा दीदीको विभिन्न सेवाओंको सिखाते थे। अब दीदी ठाकुरजीके लिए माला-मुकुट भी बनाती थीं। धीरे-धीरे कथा सुनते-सुनते परिप्रश्न करतीं और अब प्रतिदिन मठ जाने लगी थीं। यह देखकर उनकी माँ और दीदी और भी प्रसन्न थीं।

दीक्षा गुरुपादपद्मसे सम्बन्ध

परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने वर्ष १९४१ ई॰ में जबसे चुँचुड़ामें विपुलरूपसे प्रचार आरम्भ किया, एवं सन् १९४३ ई॰ में अपने प्रथम छापाखाने (Gauranga Printing Works) को कलकत्तासे श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें स्थान्तरित किया, उस समयसे ही श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज भी परम गुरुदेवकी सेवा एवं प्रकाशन सेवाके उद्देश्यसे अधिकांशतः चुँचुड़ामें ही रहते थे। उमा दीदीके परिवार विशेषकर उनकी माताजी, बड़ी बहन एवं पिताजी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ एवं विभिन्न शाखा मठोंकी अनेक प्रकारसे सेवा करनेके कारण परम गुरुदेवके

विशेष कृपापात्र थे। अतएव उमा दीदीके परिवारके साथ सुपरिचित होनेके कारण श्रील वामन गोस्वामी महाराजका उनसे निकटका सम्बन्ध था।

हरिनाम-दीक्षा ग्रहण करनेके उपरान्त उमा दीदी अपने गुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजसे साक्षात्में एवं पत्रोंके माध्यमसे बहुतसे प्रश्न करती थीं। श्रील वामन गोस्वामी महाराज उनको 'माँ उमा' बोलते थे। श्रील वामन गोस्वामी महाराजने उमा दीदीको लगभग ३५ पत्र लिखे जिनमें उन्होंने अपने पूर्ण समर्पित हरि-गुरु-वैष्णव सेवामय जीवनके अनुभवोंसे लब्ध गौड़ीय-सिद्धान्तों एवं वैष्णव पद्यावलीका शिक्षासार सरल-सहज भाषामें प्रस्तुत किया है। उमा दीदीको लिखे गए उनके समस्त पत्रोंकी विषय-वस्तु गौड़ीय विचारधाराके अनुसार परमार्थ पथपर अग्रसर होनेके इच्छुक निष्कपट साधकोंके लिए विशेष शिक्षामूलक होनेके कारण उनके अनुशीलनमें निसन्देह ही परम उपयोगी है। उमा दीदीने इन पत्रोंको अनेक वर्षों तक यत्नपूर्वक संरक्षित करके रखा। श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीके अप्रकटके उपरान्त ये पत्र क्रमशः बङ्गला एवं हिन्दी ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हुए, तथा अन्ततः उनकी आविर्भाव शतवार्षिकीपर वर्ष २०२१ ई॰ में अंग्रेजी ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हुए। इस प्रकार इन पत्रोंका संरक्षण करके उमा दीदीने वर्तमान एवं भविष्यके भक्ति-साधकोंका परम उपकार किया है।

अपनी माताजी एवं बड़ी बहनसे प्राप्त संस्कारोंसे उदित प्रबल सेवोन्मुख वृत्तिवशतः एक बार उमा दीदीने अपने गुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजको पत्र लिखकर दुःख जताया था कि यदि वह कन्या-शिष्य न होकर पुत्र-शिष्य होती, तो उनकी अधिक रूपसे साक्षात् सेवा कर पाती। इसका उत्तर उनके गुरुदेवने ७ अप्रैल १९७२ को लिखे पत्रमें इस प्रकारसे दिया—

"जीवात्मा यदि शक्तिरूपमें ही शास्त्रादिमें प्रमाणित है, तब कन्या होनेपर आपत्ति ही क्या है? *'गीताशास्त्रे जीवरूप शक्ति करि, माने'*—यह तुमने श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्य लीला ६/१६३) में पढ़ा है। अनन्त शक्तिमान् लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही—एकमात्र भोक्ता हैं एवं शक्तिस्थानीय जीवात्मा उनकी सेविका या भोग्या है। श्रीगुरुदेव भी आश्रयजातीय विग्रह, श्रीभगवान्की प्रेष्ठ सेविका हैं। अतएव उस गुरुतत्त्वपर पितृत्व आरोप करनेपर भी, वे शक्ति होनेके कारण उनका कन्याके प्रति प्रीति या स्नेह अधिक वर्तमान है।"

दिनांक ११ नवम्बर १९७० के एक अन्य पत्रमें श्रील वामन गोस्वामी महाराजने 'उमा' नामके गूढ़ अर्थके विषयमें उमा दीदीको इस प्रकार लिखा है—"अ-उ-म—इन तीन अक्षरोंको लेकर ॐ-कारकी उत्पत्ति हुई है। इन अक्षरोंमें सर्वलोकनायक श्रीकृष्ण 'अ'-कारके वाचक, जिनको गीतामें *"अक्षराणाम् अ-कारोऽस्मि"* कहा गया है। 'उ'-कारका अर्थ है श्रीराधा, जिनका *"नायिका शिरोमणि राधा ठाकुराणी"* रूपमें श्रीचैतन्यचरितामृतमें उल्लेख किया गया है। 'म'-कार अर्थसे जीव, प्राकृत जगत्में जो स्त्री-पुरुषके भेदसे सेवक-सेविकारूपमें परिचित हैं। इसलिये साधनाके द्वारा—इस ॐ-कार अथवा श्रीनामब्रह्मकी उपासनाके द्वारा—जीव परमशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकता है। श्रीराधिकास्वरूप उ-कार सहित 'मा' अक्षर युक्त होनेपर "उमा"-शब्द निष्पन्न होता है। तब श्रीराधारानी जगत्की जननीके रूपमें परिकल्पित होनेपर भी, उनके स्व-स्वरूप या परकीया-भावकी हानि नहीं होती। तुम कृष्णमयी, परादेवी, सर्वलक्ष्मीमयी, कृष्णमोहिनी श्रीराधिकाके साथ उनके प्राणनाथ श्रीकृष्णके भजनके द्वारा उनकी भक्ति प्राप्त करोगी, यही तुम्हारे "उमा"-नामकी सार्थकता है।"

श्रील वामन गोस्वामी महाराज अपने शिष्योंको सीधे आज्ञा कम ही देते थे, क्योंकि वे इस विषयमें विशेष सचेत रहते थे कि उनके किसी चरणाश्रितका गुरु-अवज्ञारूपी अपराध न हो। उन्होंने उमा दीदीको जो पत्र लिखे उनमें बहुतसे पत्रोंमें आशीष-वचन, स्नेह, उपदेश, भजन शिक्षाएँ तथा बहुत-से आदेश परोक्षरूपमें

मिलते हैं। उमा दीदीने उन उपदेश-आदेशोंका पालन अपने अन्तिम समयतक यथासम्भव किया। अपने गुरुपादपद्मके आदेशसे ही उमा दीदीने बहुत साल पहले बङ्गला भाषामें आत्म-अनात्म, साधन सम्बन्धी छोटे-छोटे प्रबन्ध लिखे जो श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशित हुए। इसके लिए धीरे-धीरे दीदीने समस्त शास्त्रोंका अनुशीलन करना आरम्भ किया था।

श्रील वामन गोस्वामी महाराज जब तक इस जगत्में प्रकट थे, उमा दीदी प्रतिवर्ष मथुरासे कार्तिक मासके बाद गौरपूर्णिमा उत्सव तक बङ्गालमें जहाँ भी उनके गुरुपादपद्म होते थे, वहाँ उनके सत्सङ्ग और हरिकथा श्रवणके उद्देश्यसे अवश्य ही जाया करती थीं।

जब श्रील वामन गोस्वामी महाराज अन्तर्दशामें थे, तब वे अधिकांशतः मौनावस्थामें ही रहते थे, किसीसे कोई वार्तालाप नहीं करते थे, किसी भी बातका प्रत्युत्तर नहीं देते थे। उस समय उमा दीदी जब उनके दर्शनके लिए गयी थीं, तब सेवकने श्रील महाराजजीको बताया कि उमा दीदी आयी हैं। उस अवस्थामें श्रील महाराजजी मात्र एक शब्द बोले 'उमा'। इससे ज्ञात होता है कि उमा दीदीका अपने गुरुपादपद्मके साथ एक प्रगाढ़ सम्बन्ध था और वह उनकी विशेष कृपापात्री थीं।

श्रील गुरुदेवकी व्रजकथाके प्रति लोभ एवं उनसे पारमार्थिक सम्बन्ध

उमा दीदीके पारमार्थिक जीवनकी नींव श्रील त्रिविक्रम महाराजने बनाई थी। किन्तु श्रील गुरुदेव—श्रील नारायण गोस्वामी महाराजसे व्रजरसकी कथा सुनते-सुनते उमा दीदी व्रजकथाके प्रति आकर्षित होने लगीं। तब चुँचुड़ामें रहते हुए दीदी नियमित रूपसे श्रील गुरुदेवको पत्र लिखा करती थीं। श्रील गुरुदेव बीच-बीचमें चुँचुड़ा अवश्य जाते थे। श्रील गुरुदेवने मथुरासे प्रायः ७० पत्र उमा दीदीको लिखे थे, जिनमें दीदीके प्रति पारमार्थिक उपदेश-निर्देश,

उत्साह-प्रेरणा, स्नेह-आशीषयुक्त वचन देखे जाते हैं। उन पत्रोंमें श्रील गुरुदेवने उमा दीदीकी माताजी एवं बड़ी बहन जो कि दोनों ही परम गुरुदेवकी चरणाश्रिता थीं, तथा उनके परिवारके अन्य सदस्योंके द्वारा परम गुरुदेवकी तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समीतिके विभिन्न मठोंके लिए की गयी वैष्णवोचित आन्तरिक सेवाओंके लिए विशेष कृतज्ञता भी प्रकट की है। इनमेंसे कुछेक पत्र श्रीभागवत-पत्रिकाके पूर्व अङ्कोंमें प्रकाशित भी हुए हैं तथा दो पत्र श्रीपत्रिकाके इस अङ्कमें भी प्रकाशित हुए हैं।

उमा दीदी अपनी माताजीके देहान्तके बाद सोचने लगीं कि अब क्या करें? वे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें थोड़ा समय रहीं, किन्तु उनका मन वहाँ अधिक लगा नहीं। व्रजकी कथा सुनते-सुनते दीदीका अनुराग श्रील गुरुदेवके प्रति बढ़ता गया और अब दीदीमें उनके आनुगत्यमें ही रहने की प्रबल इच्छा थी। तब उन्होंने श्रील त्रिविक्रम महाराजजीसे मथुरा मठमें रहनेकी अपनी इच्छा व्यक्त की। श्रील

त्रिविक्रम महाराजजीने उनके लिए श्रील गुरुदेवसे बात की और फिर श्रील गुरुदेवने उमा दीदीको मथुरा मठमें रहनेकी अनुमति प्रदान की। श्रील त्रिविक्रम महाराजजी उमा दीदीको अपनी सन्तानके समान स्नेह करते थे, अतएव तब वे स्वयं ही चुँचुड़ासे ट्रेनमें उमा दीदीको अपने साथमें लेकर मथुरा मठमें छोड़नेके लिए आये थे।

श्रील गुरुदेवकी कथा सुननेके लिए उमा दीदीमें तीव्र उत्कण्ठा रहती थी। गुरुदेवकी हरिकथाके अलावा वे और कोई इच्छा नहीं करती थीं। मथुरा मठमें हो या मठसे बाहर मथुरामें कहीं भी श्रील गुरुदेवकी कथाका आयोजन होता, उमा दीदी सर्वत्र ही उपस्थित हो जाती थीं। मथुरा मठमें श्रील गुरुदेवकी कथामें उमा दीदी महिला side में सर्वदा सबसे आगे बैठती थीं और सदा कथा समयसे पूर्व उपस्थित होती थीं। यदि कभी किसी सेवाकार्य वशतः उन्हें कथामें विलम्ब होनेकी सम्भावना दिखती तो दीदी पहलेसे ही सबसे आगे अपने बैठनेके निश्चित स्थानपर अपनी notebook रख जाती थीं कि उनके स्थानपर कोई दूसरा न बैठ जाय।

उमा दीदी श्रील गुरुदेवकी कथाको सुनकर उसे अपनी notebook में लिखा करती थीं, इसलिए कथामें सर्वदा notebook लेकर बैठती थीं। वे गुरुदेवकी कथाको टेप रिकार्डरमें रिकार्ड भी करती थीं और फिर कमरेमें आकर उसे पुनः सुनती थीं। यदि कोई भक्त उनसे कथाके विषयमें पूछता तो उसे वैसेका वैसा सुना देती थीं। वे श्रील गुरुदेवसे जो कुछ श्रवण करतीं उसे चित्तमें उतार लेतीं। फिर जब उस विषयको किसीको सुनातीं तो वह उस व्यक्तिके हृदयको स्पर्श करता था। कारण—जो कोई गुरु कि शिक्षाओंको हृदय देकर सुनता है, वही दूसरोंको वास्तव सिद्धान्त-कथा सुना सकता है।

जब श्रील गुरुदेवके पास प्रारम्भमें विदेशी भक्त कथा सुनने आते थे, तब गुरुदेव कुछ कथाएँ अंग्रेजीमें और कुछ हिन्दीमें करते थे। उस समय श्रील गुरुदेवकी कथाओंकी पहली अनुवादक उमा दीदी होती थीं। दीदी कथाके सारे notes बनाती थीं। विदेशी भक्त दीदीके कमरेमें गुरुदेवकी कथाका अनुवाद सुनने जाते थे। यद्यपि उनकी अंग्रेजी बहुत अच्छी नहीं थी, हिन्दी और बङ्गलाका मिश्रण करती थीं, किन्तु भक्त उन्हें बहुत प्रेमसे सुनते थे।

मथुरा मठमें वास, सहनशीलता एवं त्याग-वैराग्यमय जीवन

उमा दीदी बङ्गाल छोड़कर वर्ष १९८६ ई॰ में सम्पूर्णरूपसे मथुरा मठमें रहने आयीं थीं। उस समय वे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें रहनेवाली अकेली महिला थीं और वहाँ ३५-४० ब्रह्मचारी रहते थे। उमा दीदीका सब ब्रह्मचारियोंके प्रति सदा मातृवत् स्नेह था। मर्यादाके पालनमें वे दृढ़ थीं। मथुरामें आनेका उनका एकमात्र लोभ था श्रील गुरुदेवकी व्रजकथाको सुनना। अतः श्रील गुरुदेवकी कथा निरन्तर प्राप्त हो इस लोभसे बहुत कष्ट भी सहती थीं।

उमा दीदीने मथुरा मठमें आनेपर अपने एवं अपनी स्वधामगत माताजीके समस्त स्वर्णके अलङ्कारोंमें-से कुछ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ एवं श्रीनीलाचल गौड़ीय मठकी सेवाके लिए अपने दीक्षा गुरुपादपद्म श्रील वामन गोस्वामी महाराजको, कुछ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठकी सेवाके लिए श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजको एवं कुछ श्रील गुरुदेव—श्रील नारायण गोस्वामी महाराजको निःस्वार्थ भावसे प्रीतिपूर्वक समर्पित कर दिये। अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उन्होंने बहुत योगदान दिया। श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठके निर्माणमें भी उनका योगदान रहा। दीदीके पिताजीने एक घर दीदीके नाम कर दिया था। वहाँसे जो पैसा आता था, उसे वे हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें लगाती थीं। स्वयं साधारण जीवन व्यतीत करते हुए सादगीसे रहती थीं। कण्ठीके अतिरिक्त कुछ भी आभूषण नहीं पहनती थीं। मठके प्रति एवं वैष्णवोंकी सेवाकी वस्तुके प्रति उनकी ममता थी। सेवाकी वस्तुको नष्ट नहीं होने देती थीं।

उस समयमें मठमें रहना इतना आसान नहीं था। मठमें रहनेके लिए सहनशक्तिका होना अति आवश्यक है। जो सहे वही रहे। विशेषकर एक बड़े घरमें पली-बढ़ी स्त्रीके लिए मठमें रहना और भी कठिन था। आसपासके लोग बहुत प्रश्न करते और कटाक्ष भी करते थे। कोई ब्रह्मचारी कभी कुछ बोलता था तो दीदी सह लेती थीं। तब मठमें अधिक सुविधाएँ नहीं थीं। श्रील गुरुदेव दीदीके लिए सोच रहे थे कि बड़े धनी घरकी सुविधाओंमें रहनेवाली यह उमा इतने दिन मठके कठिन जीवनमें कहाँ रह पायेगी? इसलिए प्रारम्भमें दीदीको मथुरा मठमें रहनेके लिए स्थायी कमरा न देकर यात्री निवासमें एक कमरा दिया गया। किन्तु उमा दीदी तो दृढ़ निश्चय करके आयी थीं, वे कभी लौटकर नहीं गईं। दीदीके दृढ़ निश्चयको देखकर कुछ समय बाद उनको मठमें स्थायी कमरा दिया गया।

उस समय उमा दीदी मठमें रहनेवाली अकेली महिला थीं तथा तब उनके कमरेमें संलग्न (attached) बाथरूम नहीं होनेके कारण उन्होंने रात्रि दो बजे, अर्थात् ब्रह्मचारियोंके उठनेसे पहले ही उठकर शौच-स्नानादिसे निर्वृत होनेका अभ्यास बना लिया था। उन दिनोंमें सर्दीके समयमें भी उमा दीदी ठण्डे पानीसे ही स्नान कर लेतीं और नियमितरूपसे प्रातःकाल ठाकुरजीके बर्तन धोती थीं। दीदी मथुरा मठमें ऊपरके कमरेमें रहती थीं। गर्मीके दिनोंमें वह कमरा बहुत तपता था, किन्तु, तब भी सहन करते हुए कमरेमें ही रहती थीं। दीदीने स्वयं ही अपने लिए कूलर नहीं लिया था, वह चाहतीं तो ले सकती थीं, किन्तु आनुगत्यमय जीवनमें अभ्यस्थ दीदी स्वतन्त्र रूपसे कुछ नहीं करना चाहती थीं। फिर बहुत सालोंके बाद एक विदेशी भक्तने उनको एक छोटा-सा कूलर लेकर दिया। दीदी अत्यन्त उदार एवं accommodating स्वभावसे युक्त थीं। उन दिनोंमें यदि वृन्दावनसे कोई महिला भक्त श्रीजन्माष्टमी-राधाष्टमी आदि महोत्सवोंपर श्रील गुरुदेवकी प्रातः कालीन कथाके लिए पूर्व रात्रिमें मथुरा मठमें वास की इच्छा करती, तो दीदी अपने छोटेसे कमरेमें ही स्वयं सङ्कुचित होकर प्रसन्नतापूर्वक उनको accommodate कर लेती थीं।

दीदीने अपने घरका ऐश्वर्यमय जीवन, धन, सुख-सुविधा सब कुछ त्याग किया। वर्ष १९८६ ई॰ से २०१६ ई॰ तक वे मथुरा मठमें रहीं, किन्तु अपनी सुविधाके लिए कभी कोई शिकायत नहीं की। अपना सबकुछ अपने गुरुवर्गको समर्पित कर दिया, किसीको जताया तक नहीं। लोगोंके कटाक्ष सहे एकमात्र श्रील गुरुदेवकी कथाके लिए। मठमें अनेक ब्रह्मचारी आये और चले गये, किन्तु दीदी सहनशीलतापूर्वक अन्त तक मठमें रहीं। साधारणतः एक स्त्रीके लिए इस प्रकारसे मठवास सम्भव नहीं है, अतएव निसन्देह ही वे अपने गुरुत्रयकी विशेष कृपापात्री थीं।

भक्तिके अङ्ग पालनमें निष्ठा

भक्तिके अङ्गोंके पालनमें उमा दीदीकी निष्ठा अद्भुत थी। उनकी हरिनाममें निष्ठा, हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें निष्ठा, कथा-श्रवणमें निष्ठा, मङ्गलारति दर्शनमें निष्ठा, धाम-परिक्रमामें निष्ठा, मठके कथा-कीर्तन-आरति नियम पालनमें निष्ठा विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। प्रातःकाल लगभग २ बजे-से रात्रि १० बजे तक उनका पूरा दिन भक्तिके अङ्गोंका पालन करनेमें ही व्यतीत होता था। जैसा कि श्रील रूप गोस्वामीने उपदेशामृत ग्रन्थमें कहा है—'*उत्साहान्निश्चयात् धैर्यात्, तत्तत्कर्म प्रवर्तनात्*' अर्थात् भक्तिके अङ्गोंका पालन करनेमें परम उत्साह होना चाहिए। यह गुण उनमें परिपूर्णरूपमें देखा गया। विशेषकर मङ्गलारति दर्शनमें उनका उत्साह देखने योग्य होता था। सबसे पहले नाट्य मन्दिरमें उनका ही प्रवेश होता था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे सारी रातसे इसी पलकी प्रतीक्षा कर रही थीं। जब तक उनके शरीरमें शक्ति थी, तबतक ऐसा कभी नहीं हुआ कि वे मङ्गलारतिमें उपस्थित न हुई हों।

उमा दीदीका मठवास जीवन उच्च-स्तरके संन्यासियोंकी भाँति भोग-विलास शून्य एवं वैराग्यपूर्ण था। उन्होंने मठवासके आरम्भमें ही सब भोग-विलास हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें समर्पित कर दिया था। दीदी जैसी नियम-निष्ठा सहज ही देखनेको नहीं मिलती। दीदी रातको दो बजे उठ जाती थीं। सबसे पहले स्नानादिके बाद जय-ध्वनी देकर गीतिगुच्छसे स्तव-स्तुति आदि करतीं एवं प्रायः ३२ माला मङ्गलारतिसे पहले ही कर लेती थीं। उन्हें अनेक भजन कण्ठस्थ थे। हरिनाममें उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी एवं निद्रा पर नियन्त्रण था, अतः वे प्रतिदिन एक लाख नामजप करके ही रात्रिमें विश्राम करती थीं। दीदीके कमरेमें बहुतसे ग्रन्थ थे। वे नियमितरूपसे ग्रन्थ अनुशीलन भी करती थीं तथा गौड़ीय सिद्धान्तमें परिपक्व थीं।

उमा दीदी प्रतिवर्ष कार्त्तिक-व्रजमण्डल परिक्रमा, श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा एवं श्रीपुरीधाम परिक्रमामें भगवान्‌की लीला-स्थलियोंका दर्शन सर्वदा गुरु-वैष्णवोंके आनुगत्यमें परिक्रमा पार्टीके साथ ही करती थीं, स्वतन्त्ररूपसे नहीं। धाम-परिक्रमाके समय लीला-स्थलियोंपर जाकर धाम-महिमा एवं उन स्थानोंकी लीलाकथा अवश्य श्रवण करतीं तथा एक स्थानकी कथा सुनकर ही दूसरे स्थान पर जातीं।

दीदीको कथा-श्रवणमें रुचि थी। लीला-स्थलियोंपर श्रील गुरुदेवका अनुगत कोई नया भक्त भी कथा करता था तो दीदी उत्साहित होकर कथा सुनती थीं। इसके अतिरिक्त उन-उन स्थानोंपर दीप-दान, कुण्ड-आचमन और यथासम्भव प्रणामी आदि देकर सेवा करतीं। यह नियम उन्होंने पिछले कार्तिक (२०२२) तक पालन किया।

सन् २०२२ ई॰ से पहले तक उमा दीदी प्रत्येक वर्ष श्रीव्रजमण्डल और श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमामें नियमित रूपसे भाग लिया करती थीं। सन् २०२२ ई॰ के प्रारम्भमें श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमासे पहले उनके बहुत अस्वस्थ होनेके कारण तथा डॉक्टरोंके निषेध करनेसे वे अपने पारमार्थिक जीवनमें प्रथम बार श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमामें नहीं जा पायीं जिसके लिए उन्होंने क्रन्दनपूर्वक बहुत दुःख प्रकट किया। धाम-परिक्रमा करनेमें उनकी ऐसी निष्ठा थी कि वे खेद करती हुई बार-बार कहने लगीं कि मैं किसी अपराध-अनर्थके कारण ही इस परिक्रमामें नहीं जा पा रही हूँ।

प्रेरणादायक जीवन-चरित्र

भक्तिमें वही प्रेरणा दे सकता है, जो स्वयं गुरुवर्गकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन कर रहा हो। उमा दीदी अपने गुरुवर्गकी वाणीके साथ तदात्म थीं, अतः उनके सङ्गसे श्रील गुरुदेवके सङ्गका आभास और उनसे निकटताका अनुभव होता था। उनकी अंग्रेजी बहुत स्पष्ट नहीं थी, तथापि वे अनेक भक्तोंको अपनी नियम-निष्ठा एवं भजनके प्रभावसे आकर्षित करती थीं। दीदी हरिकथा ज्ञान अर्जित करनेके लिए नहीं सुनती थीं, अपितु आचरणमें लानेके लिए सुनती थीं। उन्हें बहुत श्लोक नहीं आते थे, किन्तु उनका हरिकथामें प्रगाढ़ प्रवेश था। तत्त्व-सिद्धान्त सुनकर स्वयं पालन करती थीं। शास्त्रोंके श्लोक याद करके बोलना आसान है, उनका पालन करना दीदीमें देखा गया।

दीदी हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके धनको व्यर्थ नहीं होने देती थीं। एकबार विदेशमें उनका चश्मा टूट गया। दीदी दुकान पर गईं और वहाँ सबसे सस्ता चश्मा ढूँढने लगीं। भक्त उनको दो चश्में लेकर देना चाहते थे, किन्तु उन्होंने यह कहते हुए एक

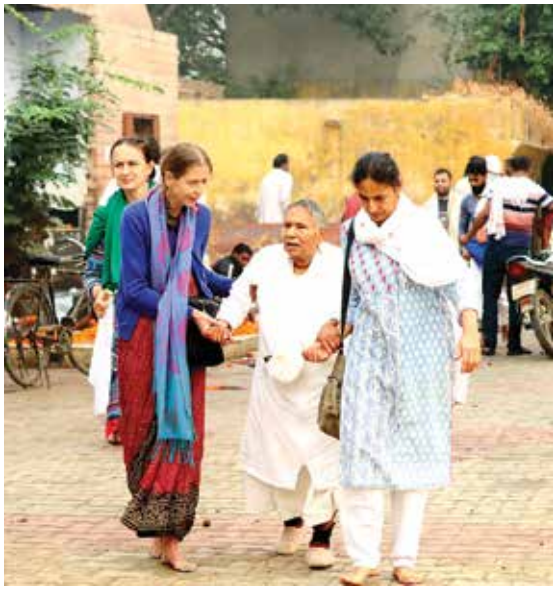

ही लिया कि यदि दूसरा होगा तो पहलेका अधिक ध्यान नहीं रखूँगी।

वे सदाचार पालनमें दृढ़ थीं। अपने साधन-भजन, नियम-सेवा आदिके विषयमें विशेष रूपसे सतर्क रहती थीं। वे एक पल भी व्यर्थ नहीं गंवाती थीं। दीदी अपने जीवनमें पवित्रताका भी बहुत ध्यान रखती थीं। विदेशमे प्रचारके लिए जाते समय दीदी हवाई जहाजके छोटेसे बाथरुममें भी स्नान कर लेती थीं। वे विदेशमें जाती थीं तो महिलाओंको मर्यादामें रहनेकी शिक्षा देती थीं। विदेशी महिलाएँ जो मठमें उचित वस्त्र पहनकर नहीं आती थीं, उनको समझाकर वैसा करनेसे रोकती थीं। दीदी अपने श्रील गुरुदेवकी आदर्श शिष्या थीं। आचरण और प्रचार दोनों करती थीं। वे सभीकी वास्तविक शुभ-चिन्तक थीं एवं उनका सङ्ग और साक्षात्कार सहज-सुलभ होता था। उन्होंने श्रील गुरुदेवकी हर प्रकारसे सेवा की—तन, मन, वाणी, धन सब गुरुदेवकी सेवामें समर्पित किया था।

दीदी वर्ष २०२१ ई॰ से शारीरिक रूपसे बहुत अस्वस्थ थीं। तथापि कार्त्तिक २०२२ ई॰ में अपने पारमार्थिक जीवनके अभ्यासवशतः उन्होंने श्रीधाम वृन्दावनके सप्त देवालयोंके दर्शन करनेकी प्रबल इच्छासे उन सब देवालयोंके दर्शन किये तथा कार्तिक-व्रतके नियम—कथा-कीर्तन, यथासम्भव परिक्रमा आदि सभी कुछ पालन किया। शरीरसे अस्वस्थ थीं, किन्तु आत्मबलसे समस्त भक्तिकी क्रियाएँ करती थीं।

अटल गुरुनिष्ठा

उमा दीदी अटल (uncompromising) गुरुनिष्ठाका एक ज्वलन्त उदाहरण थीं। अपने गुरुत्रय—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रायः ५०-६० वर्षों तक सङ्ग एवं सेवाके कारण वे अपने गुरुत्रयके प्रति ऐकान्तिक निष्ठासे युक्त थीं और यह उनके विचारों तथा क्रियाओंमें स्पष्ट दिखायी भी देता था।

उमा दीदी अपने गुरुवर्गकी विचारधाराके प्रति निष्ठावान् थीं, अतएव उनके पास सारस्वत

विचारधाराके अतिरिक्त अन्य किसी विषयके लिए समय नहीं होता था। विशेषकर वे अपने परम गुरुदेव—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी धाराके प्रति पूर्णरूपसे समर्पित थीं। वे इस धारासे एक पद भी बाहर नहीं गयीं, क्योंकि पारमार्थिकरूपसे वे इसी धारामें ही पूर्णतः पोषित हुईं थीं। दीदी वही कथा बोलती थीं जो उन्होंने गुरुवर्गोंसे सुनी थी, स्वयंसे कुछ जोड़ती नहीं थीं। वे सबमें अपने समान गुरुनिष्ठाकी कामना करती थीं। दीदीको अपने गुरुवर्गसे ममता थी, इसलिए उनकी तदीय वस्तुओं और आश्रितजनोंमें भी प्रीतियुक्त थीं।

दीदी श्रील गुरुदेवकी वाणीके प्रति पूर्णतया समर्पित थीं। उनकी विचारधाराकी रक्षा करना प्रथम कर्तव्य मानती थीं। वे श्रील गुरुदेवके मिशनमें एक प्रेरणादायक स्तम्भके समान एक शुद्ध-वैष्णवी थीं, किन्तु वे सदैव background में ही रहीं। कहीं भी सिद्धान्तोंमें कोई गड़बड़ करता तो दीदी उसका खण्डन करती थीं। अपसम्प्रदायके विचारोंको देखना-सुनना उनके लिए असहनीय था। वे कहतीं कि यदि मैं स्त्री शरीरमें नहीं होती, तो अवश्य ही इन कुविचारोंका प्रतिवाद करती।

उमा दीदी अपने गुरुत्रयकी स्नेह-कृपा-आर्शीवादकी विशेष पात्री थीं, एवं उन्होंने अपने जीवनमें अपने गुरुत्रयका पदानुसरण सभी प्रकारसे प्रतिक्षण एवं प्रतिदिन किया। दीदी कहती थीं कि मेरे गुरुत्रयकी हरिकथाने मेरा सारा जीवन बदल दिया। मैं कुछ ओर मार्ग पर चल रही थी। गुरु-वैष्णवोंने कृपा करके मुझे भक्तिका मार्ग दिखाया। दीदीका स्नेहभरा स्वभाव उनके गुरुत्रयके स्नेहसे पालित-पोषित होनेकी छवि था।

सेवानिष्ठा

उमा दीदीकी भक्त और भगवान्‌की सेवामें विशेष रुचि थी। अतएव, उनका सारा दिन भक्त एवं भगवान्‌की सेवाके लिए ही समर्पित था। प्रतिदिन मङ्गलारतिके बाद ठाकुरजीके बर्तन एवं अर्चनके पात्र वे ही माँजती थीं। सायंकालमें ठाकुरजीको भोग लगनेवाले फलोंकी अमनिया-सेवा भी नियमितरूपसे करती थीं। जिसे हम लोग निकृष्ट सेवा मानते हैं, उस सेवाके प्रति उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। ऐसा नहीं है कि वे कोई अशिक्षित थीं। हमारा यह विचार है कि मठ-मन्दिरमें झाड़ू-पोंछा तथा बर्तन माँजनेकी सेवा वही लोग करते हैं जो शिक्षित नहीं हैं। किन्तु वे शिक्षित थीं तथा अत्यन्त धनी परिवारसे थीं। साथ ही शास्त्रोंमें भी उनका गहरा प्रवेश था। उनकी हरिकथा भी अत्यन्त प्रेरणादायक तथा प्रभावशाली होती थी। इतने समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न होते हुए भी बिना किसी अभिमानके अनेकानेक वर्षों तक मथुरा मठमें नियमितरूपसे ठाकुरजीके बर्तन माँजनेकी सेवा करना कदापि आसान नहीं है। इसीका नाम अकिञ्चनता है। जैसा कि श्रीमद्भागवतमें कुन्तीजीने कहा है—"*जन्मैश्वर्य श्रुतश्रिभिरेधमानमद पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं त्वां अकिञ्चनगोचरं*"—अर्थात् हे कृष्ण! आप अकिञ्चनगोचर हैं। अकिञ्चन व्यक्ति ही आपकी भक्ति कर सकता है। जिसे अपने उच्चकुलमें जन्मका अभिमान है, धनका अभिमान है, पाण्डित्यका अभिमान है, रूपका अभिमान है, वह कभी भी आपका भजन नहीं कर सकता।

दीदीको रंधन करनेमें विशेष रुचि थी एवं वे अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनानेमें निपुण थीं। जबतक उनका शरीर स्वस्थ था वे प्रतिदिन स्वयं ठाकुरजी और वैष्णवोंके लिए एक व्यञ्जन अवश्य बनाती थीं। कोई सहायता करे या न करे, अपेक्षा नहीं रखती थीं। ठाकुरजीके लिए समोसा, मठरी इत्यादि बहुत अच्छा बनाती थीं। प्रतिवर्ष कार्तिक मासमें परिक्रमा पार्टीके गिरिराज गोवर्धनमें वास करते समय रसोईघर रात्रिमें ही कुछ समयके लिए खाली रहता था। अन्नकूट महोत्सवके लिए उमा दीदी कुछ दिन पहलेसे ही रात-रात जागकर गिरिराजके भोगके लिए अनेकों प्रकारके पकवान-व्यञ्जन स्वयं बनाती थीं एवं दूसरोंसे बनवा लेती थीं। उस समय उनकी स्मरण शक्ति एवं दृष्टि बहुत प्रखर रहती थी। एक ही समयमें अपना पकवान भी देख लेती थीं, तथा दूसरोंको भी बताती थीं क्या करना है। कार्तिक मासके उपरान्त देश-विदेशमें जहाँ-जहाँ प्रचारमें जातीं, वहाँके भक्तोंके लिए अन्नकूटका सूखा प्रसाद लेकर जाती थीं। अपनी इस रंधनकी नियमसेवाका दीदीने गत कार्त्तिक २०२२ ई॰ तक यथासम्भव पालन किया।

भक्तिका मुख्य साधन वैष्णव-सेवा है। दीदीकी वैष्णव-सेवामें भी प्रगाढ़ रुचि थी। गुरुवर्गकी तिथियोंपर उनके पसन्दके व्यञ्जन बनाकर भोग लगाती थीं। मथुरा आनेसे पूर्व उमा दीदी जब चुँचुड़ामें रह रहीं थीं, उस समय श्रील वामन गोस्वामी महाराज जब भी चुँचुड़ा मठ जाते तो प्रसाद दीदीके घर ही पाते थे। दीदी स्वयं उनके लिए रंधन करती थीं। श्रील गुरुदेव—श्रील नारायण गोस्वामी महाराज भी कभी-कभी चुँचुड़ामें उनके घर जाते थे। तब भी दीदी स्वयं ही श्रील गुरुदेवके लिए रंधन करती थीं। उन दिनोंमें गौड़ीय भक्तजन नवद्वीपसे मथुरा आनेके लिए अधिकांशतः 'तूफान मेल'से ही यात्रा करते थे। कारण—उन दिनोंमें 'तूफान मेल' हावड़ासे आरम्भ होकर बेंडल आदि विभिन्न स्टेशनोंपर रुकते हुए मथुरा स्टेशनपर आती थी। जब भी श्रील गुरुदेव नवद्वीपसे मथुरा आनेके लिए 'तूफान मेल'से यात्रा करते थे, तब-तब दीदी श्रील गुरुदेव एवं उनके साथ जितने भी भक्त होते थे, उन सबकी यात्राके लिए स्वयं एवं अपनी बहन गार्गी दीदीके साथ रंधन करती तथा स्वयं ही मिट्टीकी हाण्डी-कसोरोंमें प्रसादको लेकर चुँचुड़ासे बेंडल स्टेशनपर ले जाकर श्रील गुरुदेवको अर्पित करती थीं। एकबार दीदीने श्रील गुरुदेवके लिए कुछ व्यञ्जन बनाये। दीदी सोच रहीं थीं कि श्रील गुरुदेवको अच्छे लगेंगे। किन्तु गुरुदेवने दीदीको थोड़ा डाँटते हुए कहा कि कितनी मिर्ची डाली है तुमने! कृष्णका कोमल-सा होठ-मुख जल गया होगा! इसके बादसे दीदी अपने रंधनमें मिर्चीका विशेष ध्यान रखती थीं।

उमा दीदीका सेवाके प्रति विशेष झुकाव था। वे कहती थीं कि उन्होंने श्रील गुरुदेवसे यही सुना है कि भक्तिमार्गमें सेवा करते-करते ही भगवान्‌की प्राप्ति होती है। वेद पढ़कर भी भगवान्‌को नहीं जान सकते। गोपियोंने शास्त्र नहीं पढ़े थे, किन्तु तीव्र अनुराग था गोपियोंका। उन्होंने सेवासे कृष्णको वशीभूत किया।

महाराजके समाधि मन्दिरकी सेवा, परिक्रमा-कालमें किसी एक दिन सभी भक्तोंके लिए एक समयके प्रसादकी सेवा, श्रीनृसिंहपल्लीमें भगवान् श्रीनृसिंहदेवके लिए १० क्विंटल दूधसे खीर भोग इत्यादि सेवाएँ विशेषरूपसे करती थीं। श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके प्रथम दिन परम गुरुदेवके तिरोभाव महोत्सवमें सभीके लिए मध्याह्न प्रसादकी सेवा, अन्नकूट महोत्सवमें सेवा,

अतएव, प्रीतियुक्त सेवाके द्वारा ही भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला सभी स्वतः प्रकाशित होते हैं।

उमा दीदी कहा करती थीं कि एक साधकको अपने अन्दरमें सदा विचार करना चाहिए कि वह गुरु-कृष्णकी अनुकूलताके लिए सेवा कर रहा है, या अपनी अनुकूलताके लिए कार्य कर रहा है। अनुकूलमय सेवा करनेवाला सदा यह भाव रखेगा कि मेरे गुरुदेवने मुझे सेवाका सौभाग्य प्रदान किया है—यह उनकी कृपा है। कारण—मेरे अयोग्य होनेपर भी उन्होंने मुझे ग्रहण किया है, यही आदर्श सेवकका भाव है।

अपनी भक्तिमती माँ एवं बड़ी बहनसे प्राप्त सेवावृत्ति एवं संस्कारके अनुसार अपने मठ जीवनके आरम्भसे ही उमा दीदी प्रतिवर्ष श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा एवं श्रीव्रजमण्डल परिक्रमामें मुक्त हस्तसे आर्थिक योगदान करती थीं। श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमाके समय श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रीविग्रहोंकी सेवा, अपने दीक्षा गुरुपादपद्म एवं परम गुरुदेवके समाधि मन्दिरोंकी सेवा, श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें भी श्रीविग्रहोंकी सेवा, श्रील गुरुदेवके समाधि मन्दिरकी सेवा, श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी अपने दीक्षा गुरुपादपद्म एवं श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके तिरोभाव महोत्सवमें सभीके लिए मध्याह्न प्रसादकी सेवा, झूलन-महोत्सवमें श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें सेवा, श्रीजन्माष्टमीमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सेवा—ये उनकी कुछ वार्षिक सेवाएँ थीं।

श्रील गुरुदेवकी मनोऽभीष्ट ग्रन्थ-प्रकाशन सेवाओंके प्रति उमा दीदीका विशेष लगाव था। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके उपरान्त ग्रन्थ-प्रकाशन सेवा सुचारु रूपसे चलती रहे, इसके लिए वे अपनी प्रणामीसे यथासम्भव आर्थिक योगदान करतीं थीं। अंग्रेजी भाषामें अनुदित श्रील गुरुदेवके विभिन्न ग्रन्थों एवं हिन्दीमें प्रकाशित चैतन्य-चरितामृतके सभी पाँच खण्डोंके प्रकाशनमें उनका सम्पूर्ण आर्थिक आनुकूल्य रहा। श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके लिए भी वे समय-समय पर आर्थिक सहायता करती थीं। श्रील गुरुदेवकी हरिकथाओंकी संरक्षण-सेवा (Audio-Seva) एवं श्रील गुरुदेवके जीवन-चरित्रपर बन रहे वृत्तचित्र (documentary film) के लिए भी दीदीने विशेषरूपसे आर्थिक सहयोग किया है। वे सेवासे सम्बन्धित जो

भी सोचती थीं, संकल्प करती थीं, उसे अवश्य पूर्ण करती थीं। इतनी सेवाएँ करने पर भी वे कदापि अपनी श्रेष्ठता नहीं जताती थीं।

प्रतिष्ठाशा रहित, शरणागत, सरल-निष्कपट, कृतज्ञ

उमा दीदी अपनी पारमार्थिक स्थितिके प्रति सदा निष्कपट एवं आत्म-विश्लेषक रहीं तथा स्वयंको गुरुवर्गकी कृपाके क्षुद्र पात्रके रूपमें अनुभवकर सर्वदा विनम्र रहीं। दीदीने कदापि अपनेमें श्रेष्ठ होनेका अभिमान पोषण नहीं किया, वे स्वयंको साधारण जनोंमें-से एक मानती थीं। प्रचार-सेवामें एक बड़े प्रचारकको मिलनेवाली प्रतिष्ठाकी तरङ्गोंमें बहकर कदापि अपने-आपमें रोमाञ्चित नहीं होती थीं।

जब कोई दीदीको आदर-सम्मान करता था तो वे कहती थीं, आज कोई सम्मान कर रहा है तो मैं प्रसन्न हो जाती हूँ, कलको वही व्यक्ति सम्मान नहीं करेगा, निन्दा करेगा तो ऊपरसे तो शान्त रहूँगी किन्तु अन्तरसे जल जाऊँगी, दुःखी हो जाऊँगी। दीदी बहुत सत्यवादी थीं। कभी दिखावा नहीं करती थीं कि वह श्रेष्ठ हैं।

अपनी प्रौढ़ अवस्थामें भी वे झुककर संन्यासियोंको प्रणाम करती थीं एवं सबको यथायोग्य सम्मान देती थीं। दीदी कहती थीं कि मुझमें कोई योग्यता नहीं है, गुरु-वैष्णवोंकी कृपासे ही लोग मेरी बात सुनते है। कोई उनका अपमान भी करता था तो दीदी सहज रहकर उनको भी सम्मान देती थीं। दीदी अपनी कथा बोलते समय आँखे बँद रखती थीं, और उनकी कथा सरलभावसे हृदयसे निकलती थी। कथाके बाद वे कभी नहीं पूछती थीं कि तुम्हें मेरी कथा कैसे लगी, क्योंकि वह जो कुछ भी बोलती थीं, वह सब गुरुवर्गोंकी वाणी है।

दीदी सदा ध्यान रखती थीं कि उनके अनुगत कोई भी भक्त श्रील गुरुदेवकी आज्ञा पालन कर रहा है या नहीं। दीदी अपनी महिमाका गुणगान नहीं चाहती थीं। अपनी ओर नहीं, बल्कि गुरुवर्गोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिए उसे तत्पर करती थीं।

वह हरिनाम करे, परिक्रमा करे, जितना हो सके श्रील गुरुदेवके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेमें योगदान करे।

गुरुत्रयने उमा दीदीके गुणों एवं सेवावृत्तिको लक्ष्य करके वर्ष १९८६ ई॰ में गौरपूर्णिमाके दिन उनको 'भक्तिमाधुरी' उपाधिसे विभूषित किया था। किन्तु उन्होंने इस विषयमें कभी किसीको बताया तक नहीं –कभी अपने ही मुखसे इसका बखान नहीं किया। दीदीकी यह उपाधि भी उनके इस जगत्से जानेके बाद ही भक्त समाजमें प्रकाशित हुई है।

प्रचारमें दीदीको जितनी भी प्रणामी मिलती उसमें-से विभिन्न सेवाओंके लिए अलग-अलग बंडल बनाकर उन सेवाओंमें लगाती थीं। अपने लिए कुछ नहीं रखती थीं। कभी-कभी श्रीतीर्थ महाराजजी उनको कहते थे कि दीदी आप थोड़ा अर्थ बचाकर रखो, कलको काम आएगा। किन्तु, दीदी उनको कहती थीं कि यदि मैं सञ्चय करूँगी, तब मेरी भगवान्के प्रति छह प्रकारकी शरणागति कैसे होगी? वे पूर्णरूपसे अपने गुरुवर्ग और भगवान्की शरणमें रहती थीं। पिछले कुछ वर्षोंसे शारीरिक अस्वस्थताके कारण प्रचारमें भी नहीं गयी थीं। किन्तु तथापि उनके पास अर्थ स्वतः ही आता था। अपने अन्तिम समय तक अस्वस्थ रहने पर भी वे हरि-गुरु-वैष्णव-सेवासे पीछे नहीं हटीं। दीदी निष्कपटरूपमें भगवान्के भजन-परायण थीं।

पारमार्थिक मार्गके पथिक-साधक द्वारा पथपर चलते समय भूल-त्रुटि हो जाना अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु अपनी भूल-त्रुटिका अनुभव होनेपर भी सबके समक्ष उसे स्वीकारकर क्षमा प्रार्थना करनेका साहस सबमें नहीं होता। सरलता और निष्कपटता गुण होनेपर ही ऐसा साहस दृष्टिगोचर होता है। उमा दीदी अन्तर-बाहर समव्यवहारका पालन करनेके कारण सरल-निष्कपट स्वभावयुक्त थीं। इसी कारण एक समय विदेशमें भरी सभामें हरिकथा परिवेशन करनेके बीचमें ही वे कहने लगीं कि श्रील गुरुदेव मेरे हृदयमें कह रहे हैं, "उमा! तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है।" तब अपनी एक भूलका अनुभव होनेपर क्रन्दन करते हुए उन्होंने अपनेसे आयुमें बहुत कनिष्ठ एक महिला भक्तसे सबके समक्ष क्षमा माँगनेमें तनिक भी दुविधा बोध नहीं की। यद्यपि वे चाहतीं तो एकान्तमें भी उस महिला भक्तसे क्षमा प्रार्थना कर सकती थीं, किन्तु वे बालकके समान सरल थीं, बहुतसे भक्तोंके बीच हरिकथा बोलते समय भी उनमें मिथ्याभिमानका लेश भी नहीं था। अतः उन्होंने भरी सभा की चिन्ता नहीं की और सबके सामने अपनी भूल स्वीकार की।

यदि कोई भी उमा दीदीके लिए थोड़ी भी सेवा करता जैसे दवाई लाना या मिठाई आदि लाना तो दीदी बहुत आभार प्रकट करती थीं। वे कहती थीं कि अब मैं तुम्हें क्या दूँ, तुमने मेरी सेवा की है, फिर उसे प्रसाद और आर्शीवाद देती थीं। एक बार उमा दीदी किसी एक भक्तके घरमें रुकी थीं। वह महिला भक्त समयपर ऑफिससे लौट नहीं पायी। किन्तु उनके पति घर पर ही थे। उमा दीदीने संध्याका प्रसाद तब तक नहीं पाया जब तक वह महिला भक्त लौटकर नहीं आयी। दीदीको अपनी अवस्था या श्रेष्ठताका कभी अहङ्कार नहीं होता था। नवीन भक्तोंके द्वारा की गयी सेवाओंके प्रति भी वे कृतज्ञता अनुभव करती थीं।

स्वाभाविक दैन्यसे युक्त

उमा दीदीको परम गुरुदेवके दर्शन तथा उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन्होंने श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी बहुत कथा अपने जीवनमें ग्रहण की, श्रील वामन गोस्वामी महाराजसे दीक्षा ग्रहण की और श्रील गुरुदेव—श्रील नारायण गोस्वामी महाराजसे सब समय शिक्षा ग्रहण की। श्रील वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील गुरुदेवके द्वारा उन्हें लिखे गये पत्रोंसे स्पष्ट हो जाता है कि दोनों गुरुजनोंकी उनपर अपार करुणा थी, या ऐसा कहें कि वे गुरुत्रयकी अत्यन्त कृपापात्रा थीं। परन्तु, इतना होनेपर भी उनके अन्दर लेशमात्र भी अहङ्कार नहीं था। यह कोई साधारण बात नहीं है। वे किसीको ऐसा जताती नहीं थी कि परम गुरुदेवका अथवा कितने श्रेष्ठ गुरुजनोंका उन्होंने बहुत समय तक सङ्ग एवं सेवा की है। अथवा उन्हें कभी भी अपनी महिमाका गान करते हुए नहीं देखा गया। यदि कदापि कोई उनसे कहता कि—"आप धन्य हैं, आपने तो परम गुरुदेवके दर्शन भी किये हैं, आप गुरुवर्गकी विशेष कृपापात्री हैं, तो वे कहती थीं, यही तो दुःखकी बात है कि इतना सबकुछ प्राप्त होनेपर भी मैं उसका लाभ नहीं उठा

सकी।" इसके अतिरिक्त विभिन्न मठोंकी प्रचुर परिमाणमें सेवाएँ करके भी कदापि किसीको इस विषयमें नहीं जतलाती थीं।

यद्यपि पारमार्थिक दृष्टिसे वे किसी संन्यासीसे न्यून नहीं थीं, किन्तु स्वाभाविक दैन्यवशतः वे दासानुदासी अभिमानमें प्रतिष्ठित थीं। अनेकानेक शिष्य बनानेकी योग्यता रहनेपर भी वे स्वयं एक शुद्ध-शिष्या ही बनकर रहना चाहती थीं। उनके इन गुणोंके कारण संन्यासी-ब्रह्मचारी-ग्रहस्थ सभी उनका आदर करते थे।

वे किसी नवीन या कनिष्ठ भक्तकी कथामें भी बैठतीं थीं एवं सरलता और दीनतापूर्वक उससे कहतीं—'मैंने आज आपकी कथामें कुछ नया सीखा है।' विशेषकर यदि नवीन या कनिष्ठ भक्त उनके दीक्षागुरु या शिक्षागुरु जनोंकी वाणीका अनुकीर्तन करता, तो अपने गुरुवर्गकी वाणीके प्रति समादरके कारण वे दीन-हीन और विनम्र होकर श्रवण करतीं।

वे नम्र स्वभावकी थीं। कई बार देखा गया कि कुछ भजन-अनभिज्ञ अथवा नए ब्रह्मचारी जो दीदीको नहीं जानते थे, उन्हें स्त्री मानकर उनसे कभी ऊँची आवाजमें बात करते थे, उनका अनादर भी कर दिया करते थे, परन्तु वे इस बातका बुरा नहीं मानती थीं। दीदी उनसे कभी नहीं कहती थीं कि मैं पुरानी हूँ या तुमसे श्रेष्ठ हूँ। अपनेसे छोटे नवीन या कनिष्ठ भक्तोंको भी जो उनके पुत्र-पौत्रके समान थे, प्रभु कहकर पुकारती थीं। उन्हें 'तुम' या 'आप' कहती थीं, उनके लिए 'तू' शब्दका प्रयोग नहीं करती थीं। वे अजातशत्रुके समान थीं, अर्थात् किसीको भी अपना शत्रु नहीं मानती थीं, न ही किसीके प्रति द्वेषभावका पोषण करती थीं।

उमा दीदी एकबार बङ्गालसे ट्रेन द्वारा वृन्दावन आ रही थीं। एक विदेशी महिला भक्त उनके साथ थीं। उन महिला भक्तने दीदीको सोते समय एक हल्का विदेशी तकिया दिया। दीदीने जैसे ही उसे सिरके नीचे रखा, हवाके झोंकेसे वह खिड़कीके बाहर चला गया। उन महिला भक्तको अपने उस तकियेसे आसक्ति थी, वह चिल्ला उठी, मेरा तकिया! उमा दीदीने तुरन्त उनसे क्षमा माँगी कि उनके कारण वह तकिया उड़ गया। बादमें उस विदेशी महिला भक्तको बहुत अनुताप हुआ कि एक तुच्छ वस्तुके कारण एक श्रेष्ठ वैष्णवीने उनसे क्षमा माँगी।

यद्यपि श्रील गुरुदेवके प्रकटकाल तक उमा दीदी श्रील गुरुदेवकी कथामें सबसे आगे ही बैठती थीं,

किन्तु श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके बाद वे पीछे ही बैठने लगी थीं। वे कभी भी अपनी श्रेष्ठताका बखान नहीं करती थीं कि मुझे आगे बैठने दो। वे सभामें सबसे अन्तमें बोलती थीं और कहती थीं कि जो अधिक योग्य हैं, उन्हें पहले बोलना चाहिए।

मठवासियोंके प्रति वात्सल्य

मठके ब्रह्मचारियोंके प्रति उमा दीदीका मातृवत् वात्सल्य था। ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंको भाई अथवा पुत्रोंके समान स्नेह करती थीं। मथुरा मठमें रहते समय वे प्रायः ठाकुरजीके लिए नये-नये पकवान बनाती थीं। ठाकुरजीको भोग लग जानेके पश्चात् सब मठवासियोंको बुला-बुलाकर स्वयं परोसती थीं। यदि कोई ब्रह्मचारी किसी कार्यवशतः मठसे बाहर गया होता था, तो उसके लिए अलगसे अपने कमरेमें रख दिया करती थीं। उसके मठमें आ जानेके बाद उसे बुलाकर देती थीं। उन दिनोंमें ठाकुरजीके भोगके लिए बाजारसे मिठाई बहुत कम ही आती थी। कोई दे गया तो वह भोग लगती थी, अन्यथा प्रायः उमा दीदी ही भोगके लिए विभिन्न प्रकारकी मिठाईयाँ बनाती थीं।

उमा दीदी जब विदेश प्रचारसे लौटती थीं तो छोटे ब्रह्मचारियोंके लिए टॉफी, पेन, note book इत्यादि लेकर आती थीं। किस ब्रह्मचारीकी सेवामें क्या आवश्यकता है, वे जानती थीं।

विदेश प्रचार एवं निरपेक्ष प्रचारक

उमा दीदी २००७ ई॰ में विदेशमें श्रील गुरुदेवके एक कार्यक्रममें गयीं और वहाँ भक्तोंसे मिली। बहुतसे भक्तोंने उनको विदेशमें आमन्त्रित किया। उमा दीदीने २००९ ई॰ में अपनी ७५ वर्षकी आयुमें विदेशोंमें प्रचार आरम्भ किया।

१९९६ ई॰ में श्रील गुरुदेवने अमेरिकाके New Braja (Badger) में वार्षिक उत्सव आरम्भ किया। प्रतिवर्ष श्रील गुरुदेव वहाँ एक सप्ताहके लिए जाते और

वहाँ हरिकथा उत्सवके साथ-साथ एक विराट अन्नकूट महोत्सव और गिरिराज पूजा करते थे। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके बाद २०११ ई॰ में New Braja (Badger) के भक्तजन दुःखित थे, और साथ ही आर्थिक समस्याके कारण वे उस स्थानको बेचनेका विचार कर रहे थे। किन्तु, उमा दीदीने उस वर्ष वहाँ जाकर उस उत्सवमें भक्तोंको उत्साह प्रदान किया। एक ही दिनमें अन्नकूट महोत्सवके आयोजनकी तैयारी करवायी। स्वयं दीदीने गिरिराजजीके लिए अनेकों पकवान-व्यञ्जन तैयार किए। वहाँके भक्तोंको गुरु-स्थानकी महिमा समझाकर उसके संरक्षणके लिए प्रेरित किया। इस प्रकार उमा दीदीने बेजर उत्सव और स्थान दोनोंका संरक्षण करवाया।

श्यामारानी दीदीने जीवतत्त्व पर जो अलग-अलग धारणाएँ थीं, उनके समाधानके लिए गुरुवर्गकी वाणीको सङ्कलितकर अंग्रेजीमें एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उसमें परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव और अनेक आचार्योंके

विचार प्रस्तुत किये गये। विदेशमें एक स्थानपर उमा दीदीने भरी सभामें उन विचारोंको समझाया। उन्होंने श्यामारानी दीदीको भी जीवतत्त्वके सम्बन्धमें खुलकर बोलनेके लिए निवेदन किया। श्यामारानी दीदी इस विषयमें खुलकर बोलनेमें सङ्कोच कर रही थीं, क्योंकि वे जानती थीं कि लोग व्यर्थके तर्क करते हैं। किन्तु उमा दीदी तर्कोंसे घबराती नहीं थीं। वे सत्य बोलनेसे भय नहीं करती थीं। गुरु-वैष्णवोंके प्रति सेवा निष्ठा और हरिनाम-निष्ठाका बल था उनमें।

दीदी विदेशमें ही एक घरमें कार्यक्रममें गईं और वहाँ उन्होंने जीवतत्त्व पर कथा की। वहाँके गृहस्थ भक्त दीदीके सिद्धान्तोंसे अशान्त हो गये। जब कार्यक्रमके बाद दीदी जा रही थीं तो वे लोग बाहर प्रणाम करने तक भी नहीं आये। वहाँके भक्तोंने दीदीसे पहले ही कहा था यह तत्त्व यहाँ नहीं बोलना। दीदीने कहा कि मैं यहाँ किसीको प्रसन्न करने नहीं आयी हूँ। अपने गुरुदेवकी वाणीका प्रचार करने आयी हूँ।

एकबार उमा दीदीके एक कार्यक्रममें कम लोग आए। इसके लिए व्यवस्थापकने जब दीदीसे दुःख जताया, तो दीदीने उससे कहा कि चिन्ता नहीं करो, कथा होती है भगवान्‌की प्रीतिके लिए, देवी-देवता भी हरिकथा सुनने आते है। लोग नहीं आए तो कोई बात नहीं।

दीदी अपनी वृद्धावस्थामें भी हवाई जहाजमें २२ घण्टे तक छोटीसी सीट पर बैठकर जीवोंके कल्याणके उद्देश्यसे लम्बी यात्राके कष्ट सहती थीं। लम्बी हवाई यात्राके बाद जब वे कहीं भी पहुँचती थीं तो सदा ही प्रसन्नचित्त दिखती थीं। कभी भी थकावटके कारण किसी असुविधामें नहीं लगती थीं। कितने घण्टोंकी भी यात्रा करके आयीं हों, स्नान करके मङ्गलारतिमें अवश्य प्रस्तुत होती थीं। 'नामे रुचि जीवे दया'का साक्षात् उदाहरण थीं।

उमा दीदी विदेश प्रचारमें किसी भक्तके घरपर रहते समय सर्वदा ही रङ्ग दीदीको कहा करती थीं कि हमें जो सुविधा मिली है, उससे अधिक हमें

अनुकीर्तन किया, उनके शब्द प्रभावशाली होते थे।

साधन-भजनके प्रति प्रोत्साहित करना

हम अपने जीवनमें आदर्श ढूँढ़ते हैं। किन्तु वह आदर्श बहुत ऊँचा होता है, अतः हम उसके आचार-विचार-शिक्षा धारण नहीं कर पाते। किन्तु, उमा दीदी श्रेष्ठ आदर्श होकर भी सभी भक्तोंके लिए बहुत निकट और सुलभ थीं। उन्हें देखकर लगता था कि भक्ति बहुत सरल है। वे अपने स्नेह, करुणा, पवित्रता और आचरणसे सभीका हृदय स्पर्श करती थीं। दीदी अपने आदर्श सङ्गके बारेमें बताती थीं कि उनको कितना श्रेष्ठ सङ्ग मिला और वे स्वयं कितनी अभागी थीं कि उस आदर्श सङ्गका लाभ नहीं उठा पायीं। दीदीकी बातें सुनकर लगता था कि हाँ, आज हम अधिकारी नहीं हैं, किन्तु वैष्णवोंका सङ्ग करते-करते अधिकारी बन जाएँगे।

कुछ नहीं माँगना। अपनी किसी सुख-सुविधाके लिए वे कभी किसीको उद्वेग-कष्ट नहीं देती थीं।

विदेशमें घरोंमें नौकर नहीं होते। किन्तु, जब उमा दीदी विदेशमें किसी भक्तके घरपर रहने जाती थीं तो अपने आतिथ्य करनेवाले भक्तके लिए किसी प्रकारका भार नहीं बनती थीं, अपितु अपने वासकाल तक उस भक्तके घरमें रंधनका सम्पूर्ण दायित्व स्वेच्छासे ग्रहणकर लेती थीं। वे प्रतिदिन उस भक्तके घरमें ठाकुरजीके लिए, उस घरमें रहनेवालोंके लिए तथा आगन्तुक अतिथियों—सभीके लिए रंधनसेवा करतीं तथा रङ्ग दीदी बर्तन धोती थीं। इस प्रकार उमा दीदी उनके भारको कम कर देती थीं, जिससे घरके लोग प्रसन्न रहते थे और निश्चिन्त होकर हरिकथा श्रवणका सुयोग प्राप्त करते थे। उन्होंने विदेशोंमें बहुत भक्तोंको उत्साह दिया। दूसरे प्रचारकोंकी भाँति दीदीका विशेष ध्यान नहीं रखना पड़ता था।

उमा दीदीने अपने जीवनमें एक आदर्श वैष्णवीका आचरण प्रदर्शित करके दिखाया, इसी कारणसे उन्होंने दैन्यपूर्वक गुरुवर्गकी वाणीका जो कुछ भी

दीदीमें बहुत गुण थे, लोगोंको इसका बोध भी नहीं हो पाता था, क्योंकि वह किसीको जताती नहीं थीं। वे स्त्री शरीरमें थीं, यदि पुरुष शरीरमें होती तो संन्यास ग्रहण करके अनेक शिष्य बनानेकी योग्यता थी उनमें। दीदी अपने सम्पर्कमें आनेवाली बहुत-सी स्त्रियोंको उत्साह और प्रेरणा देती थीं।

यद्यपि वे कभी मठमें कथा नहीं करती थीं, परन्तु शास्त्रोंमें पूर्णरूपसे पारङ्गत थीं। उनकी विशेषता थी कि जो कोई भी पाठ क्यों न करे, चाहे वह दो दिन पहले आया नया ब्रह्मचारी ही क्यों न हो, वे पाठमें अवश्य ही बैठती थीं। आवश्यकतानुसार कभी-कभी उसके पाठमें संशोधन भी किया करती

थीं। वे नये-नये ब्रह्मचारियोंको साधन-भजनके लिए प्रेरित करती थीं। समय-समयपर उन्हें तत्त्वज्ञान भी प्रदान करती थीं। उनके सरल-सहज दैन्यपूर्ण व्यवहारको देखकर कहींसे भी नहीं लगता था कि वे इतनी श्रेष्ठ और पुरानी हैं।

उमा दीदी सभीके लिए उपलब्ध रहती थीं। कोई भी निसङ्कोच उनके पास जाकर भक्तिसिद्धान्त या सांसारिक दुविधाओंका हल पा सकता था। दीदी सर्वदा वही बोलती थीं जो उन्होंने गुरु-वैष्णवोंसे सुना था। सभीको ठीकसे साधन करनेका उत्साह देती थीं। वह लोगोंको सहज ही बदल देती थीं। लोग संन्यासियोंके साथ इतने सहज नहीं हो पाते थे, किन्तु दीदीकी सरलतासे सभी प्रभावित हो जाते थे। श्रील गुरुदेवकी कथाके बाद जो कोई भक्त गुरुदेवसे प्रश्न नहीं पूछ पाते थे, वे उन प्रश्नोंको लेकर दीदीके पास आते थे और दीदी उत्तर दिया करती थी। वे कोई भी कार्य करनेसे पहले हरिनाम करनेकी प्रेरणा देती थीं। जब New Braja (Badger) के हरिकथा उत्सवमें दीदी जातीं तो वहाँ प्रत्येक वक्ताकी कथा बड़े ध्यानसे सुनती थीं।

उमा दीदी तब बहुत प्रसन्न होती, जब कोई श्रील गुरुदेवकी शिक्षाओंका पालन करता और साधन करनेकी चेष्टा करता। दीदी ऐसे साधकोको अपना परिवारिक जन समझती थीं। दीदी केवल एक आकाङ्क्षा रखती थीं कि सभी साधन करें और गुरु-वैष्णवों की सेवा करें। दीदी छोटी-छोटी शिक्षाएँ देती थी कि अपने बगीचेमें ठाकुरजीके लिए फूल लगाओं, विशेष तिथियों पर ठाकुरजीके लिए कुछ विशेष व्यञ्जन भोग दो इत्यादि। दीदीसे भक्तोंको एक विशेष शिक्षा यह मिलती कि कैसे श्रद्धापूर्वक कथा सुनकर और फिर उसका यथासम्भव आचरण करके श्रील गुरुदेवको प्रसन्न किया जा सकता है। यद्यपि सभी उनको 'उमा दीदी' कहकर पुकारते थे, किन्तु 'माँ' उनके नाम एवं स्नेहमें स्वभावतः ही निहित था। अतएव वे अपने सान्निध्यमें आनेवाले प्रत्येक जनको उनकी घनिष्ट 'दीदी', 'माँ' या 'बन्धु' होनेका अनुभव कराती थीं।

हम अपने जीवनमें बहुत वस्तुएँ एकत्रित करते हैं। किन्तु उमा दीदीने सिखाया कि सबसे मूल्यवान वस्तु भगवान्‌का नाम है, इसलिए अधिकसे अधिक हरिनाम जप करो। दीदी स्वयं आधी रातको उठकर निरन्तर हरिनाम करती थीं। दीदी कहती थीं कि यदि हाथमें छोटी ऊँगली भी जल जाती है तो बहुत पीड़ा होती है। उसी प्रकार गुरु-वैष्णवोंसे किसी कनिष्ठ वैष्णवका अपमान भी सहा नहीं जाता। अतः वे कहती थीं कि सबका सम्मान करो।

उमा दीदीने अपने आचार-विचार-व्यवहारसे कितने ही भक्तोंका हृदय स्पर्श किया था। जिस प्रकार श्रील गुरुदेव सबको अपना बना लेते थे, ऐसा अनुभव ही नहीं होने देते थे कि वह कितने महान् हैं, सबके घरमें रहकर उनसे घुलमिल जाते थे। दीदीका भी ऐसा ही स्वभाव था। उनके साथ रहकर बहुत सहज (comfortable) लगता था। वे सभीको सदा देती ही थीं, किसीसे कुछ भी जागतिक अपेक्षा नहीं रखती थीं, उनकी एकमात्र अपेक्षा यही होती कि सभी गुरु-आज्ञाका पालन करें। *'गुरुर सेवक हय मान्य आपनार'*, अर्थात् गुरुके सेवक हमारे लिए माननीय हैं—यह विचार अपनेसे कनिष्ठ एवं अपनेसे श्रेष्ठ—विश्रम्भ, समस्त प्रकारके सेवकोंके लिए ही प्रयोज्य है। अतएव, अपनेसे कनिष्ठ किसी भी भक्तको गुरुवर्गोंके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके लिए चेष्टा करते देखकर दीदी उससे अधिक स्नेह करती थीं। जिस प्रकार ललितादेवीका गुण है—*'यां कामपि व्रजकुले वृषभानुजाया, प्रेक्ष्य स्वपक्ष-पदवीमनुरुध्यमानाम्। सद्यस्तदिष्टघटनेन कृतार्थयन्तीं'* अर्थात् व्रजमें कहीं भी किसी युवतीमें अपनी प्रियसखी श्रीमती राधिकाके प्रति स्वपक्षकी गन्ध भी जान लेने पर ललितादेवी तत्क्षणात् उसकी समस्त मनोकामनाओंको पूर्णकर उसे कृतार्थ कर देती हैं। उसी प्रकार उमा दीदी श्रील गुरुदेवकी अल्प सेवामें रुचिपरायण किसी भी भक्तको देखने मात्रसे बिना कहे उसकी सब प्रकारसे सहायता करती थीं, अर्थात् किसीमें गुरुसेवारूपी एक गुणको लक्ष्य करने मात्रसे उसकी यथासम्भव सहायता रूपी कृपा करती थीं।

एकबार एक विदेशी भक्त गोवर्धनसे एक शिला उठाकर विदेश ले गया। व्रजवासियोंने इसके लिए उसे निषेध भी किया, किन्तु वह माना नहीं। विदेश ले जाकर उसने वह शिला अपने एक भक्त मित्रको दे दी। जब उस मित्रको पता चला कि यह बिना किसीकी आज्ञा लिए शिला ले आया है, तो उसे अपराधका भय सताने लगा। दैववश दीदी कुछ दिनोंके बाद वहाँ प्रचारके लिए गयीं। उस भक्तने अपनी शङ्का दीदीको बतायी। दीदीने उसको कहा कि वह घबराये नहीं, गिरिराजजी स्वयं अपनी इच्छासे पधारे हैं और फिर दीदीने उस भक्तको अर्चन सेवाकी सारी विधि सिखलायी। दीदीकी ऐसी करुणा उस भक्तको आज तक अभिभूत करती है। दीदी उस भक्तके घरमें भी रहीं थीं, उसका छोटा बेटा जब दीदीको देखा करता तो दीदी उसके साथ बाल्य उचित व्यवहार करती थीं। दीदी स्वभावतः बहुत सहज-सरल होनेके कारण हर आयु वर्गके साथ घुलमिल जाती थीं। बालक, प्रौढ़, स्त्री, पुरुष सभीकी भावनाको समझती थीं। इन्हीं

भक्तकी माताजी कट्टर ईसाई पन्थी थीं। जब वह भक्त इस्कॉनसे जुड़े तबसे उनकी माताजी भक्तोंका विरोध करती थीं कि वे हमारी सन्तानोंको बहकाकर धर्म परिवर्तन कर रहे हैं। बहुत सालों तक वह भक्तोंसे वार्तालाप नहीं करती थीं, किन्तु जब वे दीदीसे मिली तो बहुत प्रभावित हो गईं।

अन्तिम अवस्था एवं देह त्याग

वर्ष २०२१ ई॰ से उमा दीदी बहुत अस्वस्थ रह रहीं थीं। जब उनकी चिकित्सापर प्रतिदिनका बहुत व्यय होने लगा तब कुछ भक्तोंने मिलकर चिकित्साके लिए धन संग्रहके उद्देश्यसे इंटरनेट पर सन्देश भेजना आरम्भ किया। जब दीदीको यह ज्ञात हुआ तो उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगा और उन्होंने तुरन्त इसे निषेध किया और कहा कि मैं अपने गुरुवर्गों पर आश्रित हूँ, वे ही मेरी रक्षा करेंगे। इस प्रकारसे मेरी चिकित्साके लिए धन संग्रह न किया जाये।

अपने अन्तिम दिनोंकी कठिन शारीरिक अवस्थामें भी उमा दीदी अपने प्रिय गुरुवर्गकी गुण-महिमा गानसे पश्चात् पद नहीं हुईं। २१ जनवरी, २०२३, मौनी अमावस्याको उमा दीदीने श्रीगोपीनाथ भवनमें अनुष्ठित श्रील गुरुदेव—श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी व्यासपूजामें उनकी गुण-महिमा एवं अपने देह-त्यागसे एक सप्ताह पूर्व ८ फरवरी, २०२३ को परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी व्यास-पूजापर wheel chair से श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें आकर परम गुरुदेवकी गुण-महिमाका गान किया। अन्तिम समयमें वे

हरिनाम उच्चारण करती रहीं—यह उनके आजीवन कठोर साधन, शरणागति एवं गुरुवर्गके प्रति निष्ठाका ही फल है।

समस्त जीवन अपने श्रीगुरुवर्गकी निष्कपट सेवा और समर्पणके फलस्वरूप ही श्रीगुरु-कृपासे उमा दीदीका उनके अन्तिम वर्षोंमें श्रीवृन्दावन-धाम वास हुआ, जहाँ श्रीयमुनाजीके तटके निकट इमली-तला, सेवाकुञ्जकी सन्निधिमें उन्होंने देह-त्याग किया और श्रीयमुनाजीके तटपर ही उनकी व्रजरज प्राप्तिरूप उत्तम गति हुई। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

एइ देह अन्तिम काले, राखिबो यमुनार जले,
जय राधा-गोविन्द बोले भासिबो गो।

कब मैं देह-त्यागके समय अपनी देहको यमुनाके जलमें रखूँगा और कब मैं 'जय राधा-गोविन्द' उच्चारण करते हुए नाम-सेवारसमें बह जाऊँगा।

विरहोत्सव—

श्रीगोपीनाथ भवन (वृन्दावन), श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ (वृन्दावन), श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

(नवद्वीप), विदेशमें विभिन्न स्थानोंपर Houston, Miami, New York, Seattle एवं Zoom के माध्यमसे उमा दीदीके उद्देश्यसे विरहोत्सव अनुष्ठित हुए, जिनमें विश्वभरसे उमा दीदीके गुणमुग्ध भक्तों द्वारा उनकी श्रीगुरु-वैष्णव-निष्ठा, उनके सेवामय जीवनचरित्र तथा गुणावलीका कीर्तन-स्मरण एवं उनके सम्बन्धमें स्व-स्व अनुभवोंको व्यक्त किया गया।

श्रीनामभजन-परायण आचारवान् भक्तोंके प्रपञ्चसे विदायी ग्रहणपूर्वक साधनोचित धाममें जानेको वैष्णव-दार्शनिक जगत्में 'विच्छेद या विरह-दशा' के नामसे जाना जाता है। ऐसे वैष्णवोंके अभावमें गुरु-वैष्णवगण जो दुःख प्रकाश करते हैं, वह साधारण शोक नहीं होता, क्योंकि उनके साथमें हम भक्ति-अनुष्ठानमें अत्यन्त उत्साह-उद्दीपना प्राप्त करते हैं, अतः उनके अभावमें दुःख-प्रकाश स्वाभाविक है। हमारे जैसे भगवत्-सेवा-विमुख लोगोंके लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाशा, अन्याभिलाषिता आदिको हृदयसे बाहर निकालनेके लिए वैष्णवोंकी विरहवार्ता विशेष सहायक है। उनकी साधन-भजन-परिपाटी, गुण-महिमा आदिकी चर्चाके द्वारा साधन-भजनमें उन्नति प्राप्ति ही इसमें शिक्षाका विषय है। उनका सेवा-सौन्दर्य, सेवाप्राणता, सेवादर्शका अनुसरण कर पानेपर हृदयमें सेवाप्रवृत्तिके उदय होनेसे अधिक परिमाणमें हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें उन्नति और उत्साह प्राप्त होता है।

अत्यन्त सरल जीवनयापन, सदैव नामपरायण, शुद्धभक्तिमूलक शास्त्रोंका पठन-पाठन, शुद्धभक्तोंसे हरिकथा श्रवण-स्मरण, सांसारिक विषयोंसे वैराग्य, हरि-गुरु-वैष्णवोंके प्रति अनुराग, धाम और धामवासियोंके प्रति प्रीति, तदीय वस्तुओंके प्रति ममता, कलिहत जीवोंके प्रति अमन्दोदय दया, आचरणयुक्त प्रचार उमा दीदीके सम्पूर्ण जीवनमें देखनेको मिलते हैं।

उमा दीदी विश्वभरमें अपने सान्निध्यमें आनेवाले भक्तोंको हरिकथा, भक्ति साधनमें अपनी नियम-निष्ठा, सदाचार सम्पन्न आचरण, स्नेह, प्रसाद आदिके माध्यमसे

शुद्धभक्तिके पथपर अग्रसर होनेकी यथासम्भव प्रेरणा देती थीं। वे गुरुदेवके चरणाश्रित भक्तोंके प्रति सर्वदा वात्सल्य स्नेहसे ओत-प्रोत रहनेवाली 'माँ' स्थानीय थीं। निष्कपट साधकके लिए उनका जीवन एक प्रकाश-स्तम्भके समान है।

केनोपनिषदमें वर्णन है—

"उमा (दिव्य माता), प्रणव (ॐकार) का मूर्त्तिमन्त स्वरूप हैं। वे प्रकाशकी उज्ज्वलता हैं और पुष्पोंकी सुगन्ध हैं। उनमें हजारों सूर्योंका प्रकाश है तथा हजारों चन्द्रोंकी सुखदायक शीतलता है।"

हम उमा दीदीके श्रीचरणकमलोंमें प्रार्थना करते हैं कि वे हमपर ऐसी कृपावर्षण करें, जिससे कि हम भी किसी दिन उनके भक्ति-गुणों—उनकी नामके प्रति निष्ठा, हरिकथाके प्रति निष्ठा, धामके प्रति एवं हरि-गुरु-वैष्णवोंके प्रति सेवा निष्ठा—के मात्र एक कणको भी अपने हृदयमें विकसित करके उनके दैन्यमय भक्ति-जीवनका अनुसरण कर सकें।

भक्तिमाधुरी श्रीयुक्ता उमा दीदीकी जय!

रङ्ग दीदी द्वारा सेवा

रङ्ग दीदीने अपना सम्पूर्ण मन-प्राण देकर अनेक पुत्रों द्वारा की जानेवाली सेवाओंसे अधिक उमा दीदीकी सेवा की है। अपनी व्यक्तिगत अवश्यकताओंको गौण रखकर वे सर्वदा उमा दीदीकी छायाकी भाँति रहीं। उमा दीदीको उनके स्वाभाविक दैन्यवशतः ऐसा लगता कि वे रङ्ग दीदीसे अत्यधिक सेवा ले रहीं हैं। उमा दीदी सर्वदा अपने लिए सबकुछ स्वयं ही करना चाहती थीं। जितने अधिक परिमाणमें रङ्ग दीदी उमा दीदीकी सेवा करतीं, उतना अधिक उमा दीदीको अपनी अक्षमताके लिए दुःख होता एवं रङ्ग दीदीके साधनके लिए चिन्ता। उमा दीदीके सङ्गके प्रभावसे जितनी अधिक सेवा होनेपर भी रङ्ग दीदी अपनी नाम-संख्या पूर्ण किये बिना विश्राम नहीं करती थीं। उनके हाथ सर्वदा सेवामें लगे रहते थे

अथवा हरिनामकी झोलीमें नामसेवामें रहते। रङ्ग दीदीने अत्यन्त प्रीति एवं यत्नपूर्वक उमा दीदीकी देह-स्वास्थ्य, प्रचार-यात्रा, रंधन-सेवा इत्यादि प्रत्येक आवश्यकताका दिन-रात ध्यान रखा। भावनात्मकरूपसे बहुत तनावपूर्ण एवं कठिन परिस्थितियोंमें भी वे स्वभावतः धैर्ययुक्त, शान्त एवं नम्र रहीं, कदापि आपा नहीं खोयीं, अधीर नहीं हुईं, अथवा अपने सेवा-दायित्वसे कदापि पीछे नहीं हटीं। उन्होंने अपने आचरणसे एक आदर्श सेविकाका दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। रङ्ग दीदी द्वारा की गयी उमा दीदीकी असाधारण सेवाओंके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

—विरही भक्तगण

[सौजन्य—श्रीपाद भक्तिवेदान्त पुरी महाराज, श्रीपाद परमेश्वरी प्रभु, श्रीगोकुलचन्द्र प्रभु, श्रीचम्पक साधु, श्रीवास दास, मधुकर दास, रङ्ग दीदी, वैजयन्ती-माला दीदी, चन्द्रलेखा(चाँदनी) दीदी एवं अन्य]

(विरह-सम्वाद)

श्रीदामोदर प्रभुकी स्मृतिमें

विगत ३० जून, २०२३, शुक्रवार, आषाढ़-शुक्ल-एकादशी अर्थात् शयन-एकादशीकी शुभ तिथिपर प्रातः ४:३० बजे मङ्गलारतिकी शुभ बेलामें हमारे श्रील गुरुदेव—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके श्रीचरणाश्रित, प्रगाढ़ श्रद्धावान, एकान्तिकरूपसे उनके प्रति समर्पित, श्रीदामोदर प्रभु ६४ वर्षकी आयुमें न्यूजीलैण्डके ऑकलैण्ड शहरमें श्रीभगवान्‌का स्मरण करते हुए श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गकी विवर्धनशील सेवाओंमें अधिकार प्राप्त किए हैं।

श्रीदामोदर प्रभु (श्रीधनसुख अमरसी)का जन्म वर्ष १९५९ ई॰ में फिजीके लौटोका शहरमें भारतीय मूलके एक धार्मिक परिवारमें हुआ था। इनके पूर्वज मूलतः गुजरातके पोरबन्दरके रहनेवाले थे। दामोदर प्रभु मधुर स्वभावके सर्वदा हँसमुख रहनेवाले नम्र-वैष्णव थे। साथ ही वे बड़े कर्मठ थे तथा वैष्णव-भक्तों एवं दुखीजनोंकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहते थे। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती जयश्री दीदी भी वैष्णव-सेवा एवं भक्ति अनुष्ठानमें इनको पूरा सहयोग करती थी। दामोदर प्रभु स्वभावतः कठिन, चुनौतीपूर्ण एवं जटिल सेवाओंको स्वीकार करते थे। अपनी निःस्वार्थ सेवाओंके कारण वे श्रील गुरुदेवके विशेष स्नेहके पात्र थे।

श्रीदामोदर प्रभु अपनी धर्मपत्नी श्रीमती जयश्री देवीके प्रोत्साहन-प्रेरणासे सर्वप्रथम वर्ष २००२ ई॰ में फोनके माध्यमसे श्रील गुरुदेवके सम्पर्कमें आये। किन्तु दामोदर प्रभुका श्रील गुरुदेवसे विशेषरूपसे परिचय वर्ष २००४ ई॰ में हुआ, जब श्रील गुरुदेव आकलैंड स्थित जयश्री दीदीके पिताजी श्रीकान्तिलाल पुञ्जाके घरमें दो सप्ताह तक ठहरे। उस समय श्रील गुरुदेवका निकटतम सान्निध्य एवं दिव्य सङ्ग प्राप्त होना दामोदर प्रभु और जयश्री दीदीके लिए बहुत प्रभावशाली एवं जीवन परिवर्तनकारी अनुभव था। तभी उन दोनोंने श्रील गुरुदेवका चरणाश्रय ग्रहणकर उनसे हरिनाम प्राप्त किया तथा वर्ष २००५ ई॰ में दीक्षा भी ग्रहण की।

दामोदर प्रभु और जयश्री दीदी वर्ष २००४ ई॰ से २००६ ई॰ तक दो-दो सप्ताहके लिए व्रजमण्डल परिक्रमामें आये थे, तथा २००८ ई॰ में वे पहली बार श्रीगौरजन्मोत्सव एवं श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके लिए नवद्वीप आये। अपनी उस प्रथम श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके प्रत्येक दिन ही दामोदर प्रभु श्रीमन्महाप्रभुकी पालकीको बड़ी उत्सुकतासे परिक्रमा कालमें अन्त तक अपने कन्धेपर वहन करते थे। यद्यपि श्रील गुरुदेवने उनको प्रतिदिन इतने परिश्रमकी सेवा न करनेके लिए सावधान किया था, किन्तु दामोदर प्रभु अपने मनोबलसे जिस भी सेवाको करनेका संकल्प लेते उसे निश्चित ही पूर्ण करते थे। वे अपनी सेवाके प्रति तत्पर एवं एकाग्र चित्त होकर, विशेष प्रयोजनबोधसे स्वभावतः ही उसे अतिशीघ्र (with sense of urgency) सम्पादित किया करते थे।

वे न्यूजीलैंडमें एक उद्यमशील और सफल व्यवसायी एवं भूमि विकासकर्ता (land developer)

थे। उनकी सात फार्मेसियाँ भी थीं, जो कि न्यूजीलैंडमें सरकारी अनुदान (subsidy) के माध्यमसे समाजमें आवश्यक दवाओंको निशुल्क वितरण करनेवाली प्रथम फार्मेसियाँ थीं।

दामोदर प्रभुके जीवनमें उदारशीलताका एक विशिष्ट प्रसङ्ग है। श्रील गुरुदेवकी इच्छा थी कि श्रीजगन्नाथ पुरीमें उनका अपना एक मठ-मन्दिर हो। श्रील गुरुदेवके इस मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके लिए वर्ष २००७ ई॰ में दामोदर प्रभुने बिना किसी विलम्बके एवं सहर्ष ही स्वयंसे एक विशाल धनराशिको व्यय करके श्रीजगन्नाथपुरीमें चक्रतीर्थके अति निकट समुद्रकूलपर एक बड़े होटलको खरीदकर श्रील गुरुदेवको समर्पित कर दिया। जब दामोदर प्रभु और जयश्री दीदीने उक्त सम्पत्तिके दस्तावेज श्रील गुरुदेवको समर्पित किए, श्रील गुरुदेवने प्रसन्नतापूर्वक उन दोनोंके नामपर ही उस स्थानका नाम 'जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ' रखा। यह मठ विश्वभरसे श्रीजगन्नाथपुरीमें समागत गौड़ीय-वैष्णव भक्तोंको आतिथ्य प्रदान करता है। श्रील गुरुदेवके अनुगत संन्यासी, ब्रह्मचारी इस मठमें वास करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका जगत्में प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। दामोदर प्रभुकी यह अत्यन्त उदार एवं निस्वार्थ गुरुसेवा विशेषरूपसे उल्लेखनीय है एवं इसके लिए उन्होंने कदापि किसी विशिष्ट सत्कारकी अपेक्षा नहीं रखी। पुरीके स्थानको खरीदनेके अल्प समयके भीतर ही वर्ष २००८ ई॰ में वैश्विक मंदीका काल आरम्भ हुआ जिसके कारण दामोदर प्रभुके व्यवसायको बड़ा झटका लगा और उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी। फलस्वरूप उन्हें अपनी सातमें-से छह फार्मेसियोंको बेचनेके लिए बाध्य होना पड़ा। तब श्रील गुरुदेवने अपने चरणाश्रित शिष्य—दामोदर प्रभुकी कठिन परिस्थितियोंके प्रति चिन्तित होकर उनको उक्त पुरीकी सम्पत्तिको बेचकर भरपाई करनेका परामर्श दिया। इसपर दामोदर प्रभुने उत्तर दिया—"मुझे भीख माँगकर जीवन यापन करना स्वीकार है, परन्तु हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए अर्पित की गयी सम्पत्तिको मैं कदापि वापिस नहीं ले सकता।" यह उनके हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके प्रति निस्वार्थ समर्पणकी भावनाको प्रदर्शित करता है।

कार्तिक २०१० से पूर्व श्रील गुरुदेव अपनी अस्वस्थलीलाके समय जब श्रीराधारमणविहारी मठमें थे, तब जयश्री दीदी न्यूजीलैण्डसे श्रील गुरुदेवके दर्शनके लिए दिल्ली आयी थीं। उस समय उन्होंने श्रील गुरुदेवसे पूछा था कि क्या वे इस वर्ष पुरी मठमें रहने नहीं जाएँगे, क्योंकि वर्ष २००७ ई॰ से आरम्भकर प्रतिवर्ष ही श्रील गुरुदेव 'जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ'में कुछ समयके लिए रहने जाते थे। इसके उत्तरमें श्रील गुरुदेवने जयश्री दीदीको कहा था,—"अब जब तुम आयी हो, मैं अवश्य ही वहाँ जाऊँगा।" सत्ससङ्कल्प श्रील गुरुदेवने

अपने वचनोंकी सत्यता प्रमाणित करते हुए श्रीकृष्णकी मधुर इच्छावशतः दिसम्बर २०१०ई॰ में अपनी प्रकटलीलाके अन्तिम एक मास तक पुरी स्थित 'जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ'में ही वास किया, एवं श्रीमन्महाप्रभुके गम्भीर भावोंमें निमग्न रहते हुए इसी मठमें अपनी अप्रकट लीला प्रकाशितकर इस मठको धन्य बनाते हुए चरणाश्रितजनोंके लिए चिर-स्मरणीय बनाया।

वैश्विक मंदीका काल बीतनेके उपरान्त भी दामोदर प्रभु अपनी पूर्व आर्थिक स्थिति तक नहीं पहुँच पाये। जैसा कि भगवान्‌ने श्रीमद्भागवत (१०/८८/८) में कहा है—"*यस्याहमनुगृह्णामि हरिस्ये तद्धनं शनैः* अर्थात् मै जिनपर अनुग्रह करता हूँ, धीरे-धीरे उनका समस्त धन हर लेता हूँ। यदि वह व्यक्ति अपने बन्धुओंके अनुरोधसे पुनः धन उपार्जन करनेका यत्न करता है, तो मैं उसके उस प्रयासको भी विफल कर देता हूँ।" उक्त भागवतीय कथन दामोदर प्रभुके जीवनमें भी कुछ घटित हुआ। वे अपनी ऐसी परिस्थितिसे निरुत्साहित नहीं हुए और श्रीगुरु-वैष्णवोंकी सेवाके प्रति यथासम्भव चेष्टा परायण रहे।

गृहस्थ होनेपर भी दामोदर प्रभुने गुरु-वैष्णवोंसे प्राप्त सेवावृत्तिको अपने जीवनमें गहरायीसे आत्मसात् किया और उसका यथासम्भव पालन किया। अपनी आर्थिक स्थितिके ठीक नहीं होनेपर भी दामोदर प्रभुने सन् २०१३ में आकलैंडमें एक भक्ति-केन्द्र श्रीश्रीराधादामोदर मन्दिर और गोविन्द-भोजनालय प्रारम्भ किये। इसमें श्रद्धालु भक्तलोग हर रविवार और अन्य पवित्र दिवसों पर एकत्रित होते थे, भजन-कीर्तन करते तथा दामोदर प्रभुके हाथोंसे बनाये गये एवं भोग लगाये गये स्वादिष्ट महाप्रसादका सेवन कर गद्गद हो जाते। यहाँपर पुजारी, ब्रह्मचारी तथा परिव्राजक प्रचारकोंके लिए भी ठहरनेकी सुविधा है। इस मन्दिरमें श्रीश्रीराधाकृष्ण, श्रीजगन्नाथ-बलदेव-सुभद्रा, श्रीगौर-निताई एवं श्रीलक्ष्मी-नृसिंहदेवके श्रीविग्रह विराजमान हैं।

आकलैण्ड 'भक्ति-केन्द्र'के संस्थापक और प्रयोजक होनेके कारण दामोदर प्रभु स्वयं आरामसे बैठकर सञ्चालन कर सकते थे एवं भक्ति-केन्द्रकी सामान्य सेवाओंको अन्योंपर न्यस्त कर सकते थे। परन्तु दामोदर प्रभुका हृदय सेवाभावसे ओत-प्रोत रहता था, अतः वे प्रतिदिन मन्दिर-परिसर, श्रीविग्रहोंके गर्भगृह, रन्धनशाला आदिका मार्जन स्वयं ही अपने हाथोंसे करते थे। इसके अतिरिक्त वे नियमितरूपसे श्रील गुरुदेवकी हरिकथाओंको श्रवण करते थे एवं सुयोग मिलनेपर हरिकथा बोलते भी थे। इस प्रकार उनका समय श्रवण, कीर्तन आदि सेवाओंमें व्यतीत होता था। उत्साह-निश्चयसे परिपूर्ण उनकी उक्त क्रियाओंमें अम्बरीष महाराजके जीवनका कुछ प्रतिफलन देखनेको मिलता था। यथा, श्रीमद्भागवत (९/४/१८)

में कहा है—*'स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो----करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु'* अर्थात् महाराज अम्बरीषने अपने मनको भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें, वाणीको भगवान्के गुण-कीर्त्तनमें, हाथोंको श्रीहरिके मन्दिर-मार्जन आदि सेवाओंमें और कानोंको भगवान् अच्युतकी मङ्गलकारिणी सत्कथाओंमें लगा रखा था।

अपनी देह-मन-धन और वाणीसे सेवा करनेके फलस्वरूप शुद्ध हुए चित्तमें दामोदर प्रभुका श्रील गुरुदेवकी शिक्षाओंके मधुर-सार—श्रीमती राधारानीकी सेवाओंके प्रति विशेष लगाव उत्पन्न होने लगा। धीरे-धीरे वे 'भक्ति-केन्द्र'के श्रीविग्रहोंके शृङ्गार विशेषकर श्रीमती राधारानीका शृङ्गार करनेमें बहुत निपुण हो गये। अपनी पत्नी जयश्री दीदी द्वारा किये श्रीमती राधारानीके श्रीविग्रहके शृङ्गारको भी बारीकीसे निपुणतापूर्वक सुधारते-निखारते थे। तथापि उनकी प्रिय सेवा रन्धन ही थी। एक बार उन्होंने जयश्री दीदीसे कहा,—"मैंने श्रीमती राधारानीकी रन्धनशालामें ही अपनी सेवाएँ करनेका निश्चय कर लिया है, तुम भी निश्चय कर लो तुम क्या सेवा करना चाहती हो।" इस प्रकार श्रीविग्रहोंके लिए रन्धन करनेसे दामोदर प्रभु बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण या अनुभवके एवं बिना किसी रन्धन विधि(नुसखे)के कुशलतापूर्वक अतिशीघ्र बड़ी मात्रामें जयश्री दीदीसे भी बेहतर एवं स्वादिष्ट रन्धन करने लगे। वे अपने हृदयकी सम्पूर्ण भावनासे रन्धन करते और क्रमशः रन्धनकलामें समृद्ध होते गये। एक निष्कपट और निष्ठावान सेवकके लिए श्रीगुरु-कृपासे क्या सम्भव नहीं है?

अन्ततः दामोदर प्रभुने अपने बचे हुए व्यापारको भी बेच दिया तथा अपने व्यवसायसे पूर्णतः निवृत्त होकर, अपने जीवनके अन्तिम पाँच वर्ष, अपना सम्पूर्ण समय श्रीविग्रहोंका सुन्दर रूपसे शृङ्गार करनेमें, श्रीविग्रहोंके लिए भोग रन्धनमें एवं मन्दिरकी विभिन्न सेवाएँ करनेमें व्यतीत किए।

श्रीभगवान् प्रायः ही अपने निष्ठावान् भक्तोंको शोधन-प्रक्रियामें डालकर अतिशीघ्र ही उन्हें अपने चरणसान्निध्यके योग्य बनाते हैं। अन्त समयमें दामोदर प्रभुके एक असाध्य रोगसे पीड़ित होनेपर भी अपनी शारीरिक दिनचर्याके लिए वे प्रायः ही किसीके ऊपर निर्भर नहीं करते थे। वे योद्धा प्रकृतिके व्यक्ति थे तथा श्रील गुरुदेवकी कथा श्रवण, नाम-जप और चिन्तनमें निमग्न रहते थे। बोलनेमें असमर्थ होनेपर भी वे सदैव संज्ञानमें रहते थे, सबसे यथोचित लिखकर सम्वाद करते थे।

दामोदर प्रभु एक उर्जावान्, गतिशील एवं विविधताओंसे पूर्ण व्यक्तित्व थे। किन्तु जबसे श्रील गुरुदेव उनके जीवनमें आये, उनकी समस्त उर्जा एकाग्र होकर एक श्रेष्ठ ध्येयके प्रति केन्द्रीभूत हो गयी। जीवनकी प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी उनकी गुरु-निष्ठा अविचलित रही और वे प्रतिकूलताओंके लिए प्रायः ही कहते थे कि गुरुदेव सब मङ्गल करेंगे। श्रील गुरुदेवके अप्राकृत स्पर्शसे दामोदर प्रभुने सपत्नी अपने धन, समय और जीवनी शक्तिको हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें लगा दिया। इस प्रकार भक्त-समुदायकी विशेष सेवा करनेके कारण दामोदर प्रभु श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके विशेष कृपापात्र हुए हैं। इनके स्वधाम प्राप्तिसे हमने एक स्नेहशील बन्धु खो दिया है।

विरहीजन

(सौजन्यः जयश्री दीदी, सुबलसखा दास, श्रीवास दास एवं अन्य)

विशेष द्रष्टव्य—श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके प्रस्तुत वर्ष-१९, संख्या-९-१२ के विलम्बसे कार्तिक २०२३में प्रकाशित होनेके कारण श्रीदामोदर प्रभुका विरह-सम्वाद भी इसी अङ्कमें सम्मिलित कर लिया गया है।

श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी
द्वारा
भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

१. **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, उ. प्र. ☎ ९७१९०७०९३९

२. **श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, उ. प्र. ☎ ९२१९४७८००१

३. **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, प. बं. ☎ ९३३३२२२७७५

४. **श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, उ. प्र. ☎ ९९१७६४३९७१

५. **श्रीगोपीनाथ-भवन,** इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, उ. प्र. ☎ ९६३४५६३७३९

६. **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, उ. प्र. ☎ (०५६५)२८१५६६८

७. **श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली ☎ (०११)२५५३३२६८

८. **श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता-९ ☎ ९४३३२०३७१८

९. **श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.) ☎ ८६२९९११४००

१०. **जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा ☎ ९७७६२३८३२८

११. **श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ**, डी-५, सेक्टर-५५, नोएडा (उ.प्र.) ☎ (०१२०)२५८२०१८

१२. **श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, सर्वे-२६, हेसेरघट्टा, नृत्यग्राम कुटीरके पास, बङ्गलोर ☎ (०८०)२८४६६७६०

१३. **श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, मकान-२, गली-५, रूपनगर एन्क्लेव, जम्मू ☎ ९९०६९०४८०९

१४. **श्रीराधामाधवजी गौड़ीय मठ**, माधवी कुञ्ज, भूपतवाला, हरिद्वार ☎ (०१३३४)२६०८४५

१५. **आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन, उ. प्र. ☎ (०५६५)२५४०८४९

१६. **श्रीराधामदनमोहन गौड़ीय मठ,** २४५/१, २९वाँ क्रास, खगदास पुर, मैंन रोड़, बङ्गलूरु-५६००९३ ☎ ९९००१९२७३८

१७. **श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, १६२, सैक्टर-१६-ए, फरीदाबाद, हरियाणा ☎ ९९११२८३८६९

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2022-2024
DATE OF PUBLICATION - 28 OCTOBER 2023

पारमार्थिक सचित्र हिन्दी पत्रिका श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सदस्य बनें

एक वर्षीय (1 yr) – ३०० रु॰

पञ्च वर्षीय (5 yr) – १,२०० रु॰

आजीवन (Lifetime) – ७,५०० रु॰
[७५० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

संरक्षक (Patron) – १०,००० रु॰
[१००० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

Account name:	SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. :	037201000010611
IFSC code:	IOBA0000372
Bank:	Indian Overseas bank

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 9818779345 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

(३) **Money order** निम्न पते पर भेजें।
श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, १९४ सेवा-कुञ्ज, वृन्दावन (उ.प्र.)-२८११२१

सम्पर्क-सूत्र

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ.प्र.)

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध-समूह एवं विषय-वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाकी सदस्यता-शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –
e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929